वैदिक षट्चक्रमण्डल

कुछ विशेष निवेदन

इस पुस्तक का विषय योगियों और तंत्रशास्त्र के ज्ञाताओं में प्रसिद्ध है। पातञ्जल योगदर्शन से विदित है कि योगज्ञ ऋषियों ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की रचना तथा उनमें समानता का तत्त्वज्ञान इन शरीर चक्रों में चित्तसंयम द्वारा ही प्राप्त किया था। आज तक यह गुप्त साधन वैदिक काल से चला आ रहा है। किन्तु इसकी शिक्षा दीक्षा तथा अभ्यास-परम्परा के लुप्तप्राय हो जाने से आज सिद्धि नहीं प्राप्त होती। यही सन्तपन्थों का आधार है। एक ग्रन्थ में बताया है कि कुण्डलिनी के जगाने के पश्चात् ही मन्त्र जपों से यथेष्ट फल मिलते हैं। बौद्धकाल में भिक्षुकों द्वारा यह विद्या तिब्बत और जापान तक पहुँच चुकी थी। अनेक ग्रन्थों के अनुसन्धान के अतिरिक्त लेखक को अनेक सन्तों के दर्शन के समय कुण्डलिनी जागरण तथा षटचक्र भेदन सम्बन्धी क्रिया के विषय में किसी २ से बातचीत करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इनमें से कानपुर के सरसय्या घाट के गंगा मन्दिर में स्वामी परमानन्द जी, इटावा के सिद्ध षटकटा बाबा के शिष्य ब्रह्मनाथ जी, जबलपुर गाड़रवाडा (नर्मदा पार) के दादा जी, अयोध्या के सूर्य-कुण्ड के वृक्षहीन मैदान में रहनेवाले एक अवधूत, उन्नाव जिले में गंगातटस्थ कमलाखेर के प्रसिद्ध योगी दूधाहारी और कानपुर में नजफगढ़ के योगी स्वामी रामकृष्ण तीर्थ जी परम धाम को चले गये। दत्तात्रेय सम्प्रदाय के एक योगी और षटचक्रादि के पूर्णज्ञाता गङ्गा के समीप कानपुर में आज भी रहते हैं। परन्तु वृद्ध होने के कारण अब उनके दर्शन कम मिलते हैं।

यह अत्यन्त उपयोगी विद्या है। यह यम-नियम पालनशील शुद्धचित्त साधक को पशु श्रेणी से उठाकर, इसी जन्म में कुछ वर्षों के परिश्रम से धीरे-धीरे मोक्ष का अधिकारी बना देती है। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर ही मनुष्य दैवीजीवन अर्थात् स्वाराज्य का अधिकारी हो सक्ता है। नहीं तो पशु और मनुष्य समान ही है।

पुस्तकों को पढ़कर गुरूपदेश के बिना षटचक्र चिन्तन का अभ्यास विष्णु भगवान ने भी गरुड़ जी से पारमार्थिक शरीर सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर देते समय निषेध किया है, क्योंकि ऐसा करने से अधः पतन हो जाता है।

कुण्डलिनी जगाने के विषय में एक अनुभवी यूरोपियन पादरी की सम्मति भी ऐसी ही है:—

THE DANGER OF PREMATURE AWAKENING OF KULDALINI

"This fiery power ... is like liquid fire, as it rushes through the body, when ... aroused by the will."

"No one should experiment with it without definite-instruction from a teacher ... for the dangers ... are ... real and ... serious. Its ... movement ... may ... even destroy ... life."

"One very common effect of rousing it prematurely is that it ... excites most undesirable passions ... such men become satyrs, monters of depravity, ... They may probably gain certain Super-normal powers,

but these will be such as will bring them into touch with a lower order of evolution. ... "

Ref: The Chakras (page 47) by Rt. Rev. C. W. Leadbeater.

इस संग्रह में छापे की अनेक त्रुटियां हैं। विद्वान क्षमा करेंगे।

कानपुर, आश्विन शुक्ल १, २००६। श्री प्रसादीलाल झा

विषय सूचीपत्र

—❀❀❀—

सहस्रार तथा प्राणवाही नाड़ीचक्र

(प्रदर्शक चित्र)

(DIAGRAMMATIC REPRESENTATION OF IMPORTANT NERVOUS PLEXUSES)
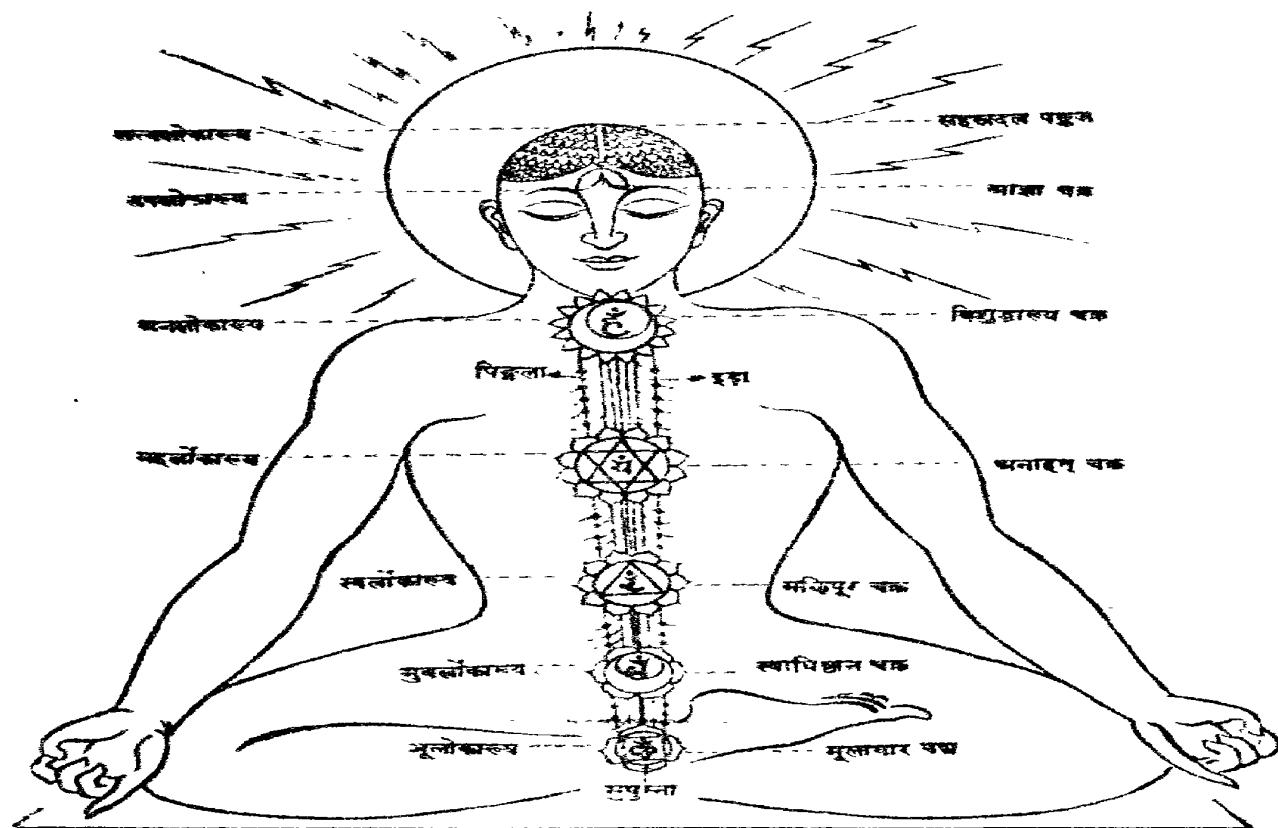
"सव्योरु दक्षिणे गुल्फे दक्षिणं दक्षिणेतरे ।
निदध्यादृजुकायस्तु चक्रासनमिदं मतम् ॥"

वराहोपनिषत्

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

शरीरस्थ षटचक्र मण्डल निरूपण

प्रकरण १

शरीरस्थ प्राणवाही नाड़ियों के जाल या नाड़ी चक्र —

योगाभ्यासियों के उपकारार्थ योगज्ञ ऋषियों ने अपने योग ऐश्वर्यबल द्वारा ब्रह्माण्ड और मानव शरीर (पिण्ड) की रचना, के मूलतत्वों का साक्षात्कार या यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ब्रह्माण्ड (लोक) और पुरुष को समान बताया है। इन दोनों के यथार्थ ज्ञान के लिये, इस पाञ्चभौतिक मनुष्य शरीर में जिन मुख्य प्राणवाही नाड़ियों (nerves) के

संधिस्थानों या जालों (plexuses) में योगियों ने प्राणायाम के द्वारा अपनी जीव शक्ति को चला (जगा या चेतन) कर अपने प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर, तथा अपनी सुषुम्ना नाड़ी (spinal cord) के अन्तर्गत स्थित प्राणवाही नाड़ियों की ग्रन्थियों का भेदन कर, शनै २ अपने शिरस्थ सहस्रदलयुतपद्म में कुण्डलिनी को पहुंचाया जाता है।

योगाभ्यास और रोगचिकित्सा दोनों के लिये ही शारीर ज्ञान की आवश्यक्ता है —

योगियों और चिकित्सकों दोनों के लिये मनुष्य शरीर का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। ये ही मानव शरीर एक ऐसा पुरुष शरीर है जिसको ऋषियों और योगियों ने लोक के समान बताया है। आयुर्वेद में चरक ने लोक और पुरुष को समान बताया गया है। तन्त्र शास्त्र में शरीर को क्षुद्र ब्रह्माण्ड कहा गया है। हमारे नित्य स्मरणीय योगज्ञ ऋषियों ने अपने योग ऐश्वर्य बल से इस मानव शरीर में प्राणतत्त्व और प्रधान प्राणवाही नाड़ियों का ज्ञान, वाह्य जगत या ब्रह्माण्डीय सूर्य, चन्द्रमा, सप्तर्षि, पर्वत, समुद्र, नदी, (गंगा, यमुना, आदि) और प्रधान २ तीर्थों के स्थानों का निरूपण किया था। अपने प्राण पर पूरा नियन्त्रण (अवरोध) करने का अभ्यास कर लिया था। वीर्य (बिन्दु) वायु और मन इन का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ब्रह्मचर्य के द्वारा और प्राणों के अवरोध से योगाभ्यासी विधिवत् योगाभ्यास द्वारा अपने चित्त (सत्व, मन, या चेतस) या चित्त की वृत्तियों या मन के चंचलपने को रोकने का अभ्यास करते थे। फिर समाहित या एकाग्र चित्त द्वारा जिस वस्तु, ध्येय या शरीर अवयव या केन्द्र में वे संयम करते थे उसका साक्षात्कार वे कर लेते थे। आयुर्वेद और योगशास्त्र दोनों में योगियों के अनेक

प्रकार के ऐश्वर्य बल के द्वारा प्राप्त सिद्धियों के वर्णन मिलते हैं। योगाभ्यासी प्राणायाम द्वारा चित्त के वृत्तियों को रोकते हुए निरन्तर समाधि द्वारा अनेक सिद्धियां और कैवल्य पद को भी प्राप्त कर लेते हैं। यम और नियमों को न पालन करने वाले योगाभ्यासी के शरीर को हानि पहुंचती है। योग के लिये विशेष सुस्निग्ध और मधुर आहार तथा योग के योग्य निर्धूम तथा पवित्र स्थानादि की आवश्यकता रहती है।

चित्त की एकाग्रता के अन्य उपाय भी हैं। जैसे कथा, इतिहास और पुराण श्रवण, तीर्थयात्रा, सन्तों के दर्शन और उनके और विद्वानों के उपदेशों का सुनना, शास्त्रचिन्तनादि। चित्त के शान्त दशा में भूख, प्यास, तथा किसी प्रकार के वेग (मल मूत्रादि) की आर्ति नहीं मालूम पड़ती और आत्मा तथा मन प्रसन्न रहते हैं।

योगियों ने सत्वसमाधान द्वारा प्राप्त योग ऐश्वर्य बल से शरीर और ब्रह्माण्ड के मूल तत्वों, और आधिभौतिक आधिदैविक तथा आध्यात्मिक भावों का साक्षात्कार या तत्वज्ञान प्राप्त किया था। योग द्वारा ही उन्होंने नवीन फिजिक्स (physics) के अनेक यन्त्रों से भी कई गुना अधिक, अपने चक्षु श्रोत्रादि बुद्धि इन्द्रियों की शक्ति बढ़ा लिया था। साधारण देखने सुनने आदि की शक्ति दिव्यशक्ति में परिणित कर ली थी। साधारण चक्षु और श्रोत्र आदि दिव्यचक्षु (Tele-vision) और दिव्यश्रोत्र (Telepathy) आदि में बदल सके थे। महाभारत और अन्य पुराणों की कथाओं में इस प्रकार की योगशक्ति के उदाहरण मिलते हैं। आज भी भारत में कभी २ ऐसे योगी देखने में आ जाते हैं, जिनमें ऐसी शक्ति पाई जाती है। आज भारत के सन्यासियों

में अनेक ऐसे तत्त्वज्ञ पुरुष वर्तमान हैं जो अपनी और विश्व के कर्त्ता, पालक और हर्त्ता के आत्मा को एक ही मानते हैं । किन्तु मैं नहीं कह सक्ता कि उनमें से कितनों में परब्रह्म या देशकालावच्छिन्न ईश्वर की त्रिविध प्रधान शक्तियां भी ईश्वर तुल्य वर्तमान हैं। शिवचन्द्र भरतिया के विचारसागर में एक ऐसा वृत्तान्त मैसूर राज्य का लिखा है कि, १५० वर्ष पूर्व मैसूर के उस समय के महाराज ने एक सन्यासी का देववत् पूजन किया। इस पर उस समय का नवाब अर्कट जो वहां उपस्थित था, उसके सन्यासी से, प्रश्न करने पर कि आप में कौन सा ऐसा "वजूद है", जो आप ईश्वर होने का दावा करते हैं ?। इतना सुनने पर उन्होंने उत्तर दिया कि, "हां", जो शक्ति ईश्वर में है, वही मुझमें है। और उस सन्यासी ने मन्त्रोच्चारण करते हुए एक लकड़ी का छोटा टुकड़ा हवा में फेंक दिया। थोड़ी देर के पीछे पञ्चतत्वों में क्षोभ उत्पन्न हो गया। तूफान आ गया, विजली जोर के शब्दों के साथ २ चमकने लगी, पेड़ की डालियां टूट २ कर गिरने लगी, आकाश में शब्द "सुनाई पड़ा और शक्ति भर दूं"। ऐसा सुने जाने पर वहां वर्तमान लोग भयभीत होने लगे। और महाराज और नवाब ने सन्यासी स्वामी की प्रार्थना कर क्षमा माँगी, तब थोड़ी देर के पश्चात् तूफान वगैरह रुक गया।

योगियों ने अपने योगशक्ति से मृत्युकाल में जीव को शरीर से निकलते भी देखा है। उपनिषदों में सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर जीव का परिमाण बाल के अग्र भाग का सहस्रवां अंश बताया है। वर्तमान कालीन फिजिक्स के एलक्ट्रान माईक्रोसकोप द्वारा क्षुद्र अतीन्द्रिय जीव के शरीरों की अनेक सूक्ष्म क्रियाओं का कारण, जीवसंज्ञक वस्तु अभी तक नहीं देखा गया। प्राणसंयम द्वारा

५

ही उन्होंने जगत के भिन्न २ भुवनों या लोकों से भी अपना संबन्ध स्थापित कर, वहां का भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था। पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित या रज में वर्तमान सौम्य और आग्नेय परमाणुओं से किस २ तरह और किन २ सूक्ष्म शरीर के प्रसादभूत और मलाख्य गुणों के योग से शरीर धातु के अङ्ग, प्रत्यङ्ग आदि की रचना होती है? और जगत प्रलयावस्था में किस प्रकार टिका रहता है? तथा सृष्टि की रचना का क्या क्रम है? ऐसी अनेक बातें अब योरोपियन्स की नवीन फ़िज़िक्स (New Physics) और साइन्सेज में, धीरे २ (नवीन आधुनिक यन्त्रों तथा प्रयोगशालाओं की जांच कसौटी पर ठीक २ उतरने पर) मिलाई जा रही हैं। उदाहरणार्थ— अनेक प्राचीन दार्शनिक तत्त्वज्ञान, जैसे सांख्य के महत तत्त्व, भूतमात्रा या तन्मात्रा आदि योरोपियन्स के साइन्स की नवीन फिजिक्स में कानशसनेस, कन्टमथियोरी (Consciousness, or Cosmic intelligence or Fundamental mind-stuff, etc & Quantum Theory) आदि के नाम से और वैशेषिक दर्शन के पञ्चद्रव्यगुण विशेष-शब्द स्पर्शादि संज्ञक इन्द्रियार्थ या अर्थ प्रगट करने वाला "स्फोट", आज नवीन फ़िज़िक्स में पांच प्रकार के सैन्सडेटा (Sense-data, as sounds, feelings etc.), विविध प्रकार के फोटन्स (Photons) कहाते हैं।

उपनिषदों में बताये आग्नेय या उष्ण गुण देवता (अर्चि, या वन्हिशिखा या रश्मि या ज्योति) और वैद्युतादिमय अणु (light rays or electrical particles) और सोमात्मक या मधुरादि अन्नरसमय (कणों या अणुओं, लव व लेशों) को आज उन्हीं की तरह पाञ्चभौतिक

(Physical), एटम्स के सूक्ष्मतर परमाणुओं या अवयवों को इलेक्ट्रान्स प्रोटान्स, पाजीट्रान्स, ड्यूट्रान्स एल्फापार्टिकल्स और न्यूट्रान्स electrons, protons, positrons, deutrons, alpha particles and neutrons) कहते हैं। हमारे शास्त्रों के सब ही अणुओं में मानसिक अंश भी बताये गये हैं। इसी कारण से जगत का बाहरी प्रत्यक्ष ज्ञान बुद्धि की इन्द्रियों द्वारा होता है। इन्द्रियार्थ (sense-data) सन्निकर्ष द्वारा जो सुख दुखादि, आकार, रूपादि का बोध होता है, उनका वर्णन कोई कृत्रिम और जड़ भौतिक यंत्र (inanimate and physical instrument) नहीं बता सक्ता है।

फिजिक्स के फोटान्स (सेन्सडेटा) में मानसिक तत्त्व (mind-stuff) का अंश अभी तक अज्ञात है। किन्तु दार्शनिक सभी बुद्धि इन्द्रियार्थ (sense-data) चरक में समनस्का बताये गये हैं। जगत की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो प्रकृति से उत्पन्न सत्व रज तम आदि गुणत्रयों से रिक्त हो। पुरुष और प्रकृति के संयोग से ही सृष्टि उत्पन्न होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों ही नित्य हैं। पुरुष तथा प्रकृति को ईश्वर और माया भी कहते हैं। वैद्यक में स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति तथा परिणाम इन सबको पृथुदर्शी प्रकृति ही कहते हैं। वेद में माया को प्रकृति कहते हैं। योगशास्त्र और भगवत् गीता में प्रकृति के परा और अपरा दो भेद बताये हैं। अपरा प्रकृति अष्टधा(मन बुद्धि अहंकार और पञ्चभूत रूपा)से जगत की उत्पत्ति बताई गई है। यह प्रकृति जड़ (inanimate) कही जाती है। और परा प्रकृति जगत को धारण करने वाली (अर्थात पालन पोषण और जीवित रखने वाली) जीवभूता प्रकृति कहाती है। उपनिषदों में प्रकृति को

माया और महेश्वर को मायिन बताया है। पुरुष प्रकृति का परस्पर का सम्बन्ध पङ्गु-अन्धवत् बताया गया है। पातञ्जल योग दर्शन के योग वार्तिक में विज्ञानभिक्षु ने शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर बताया है कि माया सनातनी है और उसका अत्यन्ताभाव कभी नहीं होता। प्रलय काल में जगत माया या अणुरूप से वर्तमान रहता है। सृष्टि के प्रारम्भ के पूर्व तम था। अर्थात् गुणत्रयों की साम्यावस्था थी। यही माया की अवस्था प्रलय काल की है।

सूक्ष्म आकाशवत् जीवसंज्ञक पुरुष या प्राणी इस स्थूल पाञ्चभौतिक शरीर में प्राण या वायुरूप से वर्तमान है। प्राण ही शरीर के रक्षक और पालक हैं। वायु यंत्र (शरीर) और तंत्र (मन) का धारक भगवान हैं। प्राण ही शरीर और मन के सब प्रकार की चेष्टाओं के मूल कारण हैं। जैसे जगत सूर्य, चन्द्रमा और वायु द्वारा धारण किया जाता है, उसी तरह शरीर भी पित्त श्लेष्म (कफ) और वायु द्वारा धारण किया जाता है।

उपनिषदों में जीवात्मा या प्राणी, (living entity or entelechy or psychoid) को त्रिविध अर्थात् आकाश, वायु और प्राण तुल्य बताया है। सब प्राणी कीट पतङ्गादि से ब्रह्मादि पर्यन्त प्राण से उत्पन्न हैं, उसी से उनकी स्थिति या जीवन है और मरने पर प्राण में प्रवेश करते हैं। प्राणी इस लोक से दूसरे लोकों में उदान वायु द्वारा ले जाया जाता है। शरीर से प्राण (जीव) के निकलने पर अन्य प्राण भी साथ२ शरीर से निकल जाते हैं। एक उपनिषत् में जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से उत्पन्न मिथुन नाम के रयि और प्राण से बताई गई है। प्राण को सूर्य और रयि को चन्द्रमा माना है। प्राण को अमूर्तमान और रयि को मूर्तमान

(physical or material) कहा है। शिवस्वरोदय में बताया गया है, कि प्राणी या जीव शरीर से सांस के साथ जब प्राण पवन पान करने के लिये बाहर आता है तब 'ह' (हकार) ऐसा मन्द २ शब्द होता है और उसके फिर भीतर लौटती समय 'स'(सकार) ऐसा मन्द २ शब्द छाती पर कान लगाने से सुनाई पड़ता है। अर्थात् जीव "हंस", "हंस", नाम के अजपा (बिना जपे होने वाला) जप रात दिन जन्म से मरण पर्यन्त करता रहता है। और हकार में पुरुष शिव और सकार में स्त्रीरूप "शक्ति" की स्थिति बताई है। तंत्रशास्त्र में प्राण को सोममय और अपान को सूर्यमय बताया है। शरीर के दहने और बांये अङ्ग भर में फैली प्राणवाही पिंगला और इड़ा नाम की नाड़ियों (nerves) में सूर्य और चन्द्रमा के चलने के मार्ग बताये गए हैं।

शिव स्वरोदय में ही सृष्टि या ब्रह्माण्ड खण्ड, पिण्डादि की रचना "ह" यानी सूर्य और "स" अर्थात् चन्द्रमा से कही गई है। 'ह' और 'स' संज्ञक दोनों तत्त्व ही मिलकर एक पूरा स्वर (पूरी सांस या प्राण कर्म– Respiratory murmurs or inspiratory and expiratory murmurs) या अजपा जप या प्राण अपान की ग्रन्थि कहाती है। स्वरोदय में "स्वर" को साक्षात् महेश्वर बताया है। एक उपनिषत् में देव, मनुष्य और पशु सबके लिये 'प्राण' आवश्यक बताया है। और प्राण ही सबका 'जीवन' है। उसी में ये भी बताया गया है, कि प्राण को ही ब्रह्म जानना चाहिये, उसी से सब प्राणी उत्पन्न होकर उसी से जीवित रहते और मरने पर उसी में प्रवेश करते हैं। आयुर्वेद में वायु को ही शरीर और मन दोनों का धारक (रक्षक और पालक या पोषक) कहा गया है, वायु ही शरीर और मन इन दोनों के सब प्रकार की चेष्टाओं

के कारण हैं। यास्काचार्य के निरुक्त में 'वायु' को भी वायव्य श्रुति के आधार पर अग्नि का तीसरा भेद बताया है। सुश्रुत में वायु को रज: प्रधान तत्त्व बताया है। और मन के रजांश को ही प्रवृत्ति (जाग्रत और स्वप्नावस्था में भी चेष्टा) का हेतु बताया है। सत्व गुण को बोध का हेतु तथा पित्त (शरीर में अग्नि के आधार) को सत्वोत्कट और तम गुण को आवरणात्मक निद्रा का हेतु कहा है। चरक ने शरीर को धारण करने वाले वात, पित्त श्लेष्म शरीरदोषों को जगत् के वायु सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य बताया है।

चरकाचार्य ने शरीर में सब प्रकार की सूक्ष्म क्रियाओं (जैसे आहारपाक, धातु पाक. ज्ञानेन्द्रियों के कर्म) के प्रधान सूक्ष्म हेतु उपरोक्त तीन दोषों की अग्नि, सोम, वायु आदि कलायें बताई हैं। सुश्रुत ने षोड़शकल पुरुष के प्राणों (कलाओं) में अग्नि, सोम, वायु. सत्व, रज, तम, पञ्चेन्द्रिय और भूतात्मा बताये हैं। चरक और सुश्रुत दोनों के मतानुसार इनको अन्त:प्राण कहा जाता है। और उनकी रक्षा, (तर्पण, धारण, पोषण)अन्न रसों में वर्तमान बाह्यप्राणों से बताई है। आयुर्वेद और वेद मंत्रों से पता चलता है, कि सूर्य आग्नेय या उष्णगुण देव (ज्योतिर्मय ग्रह) और चन्द्रमा सौम्य (रसात्मक, मधुरादि अन्न रसमय) शीत गुण रश्मियों वाला ग्रह है। इन्हीं दोनों की आग्नेय और सौम्य रश्मियों (देवताओं) के आदान प्रदान से (exchange of energy) भूतों की उत्पत्ति, स्थिति या रक्षा और विनाश हुआ करता है। ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों में सूर्य के आग्नेय देवता रश्मि या ज्योति रूप से तथा चन्द्रमा की सोमात्मक रश्मियां पृथ्वी में अन्न

रूप से व्याप्त हैं। वे ही पाञ्चभौतिक आहार, औषधि, आदि के भिन्न २ शीतोष्ण गुणों, रसों और वीर्यों के हेतु हैं। उन्हीं औषध रूप आहार रसों के द्वारा शरीर के प्रकुपित (वृद्ध) दोषों का क्षय होता रहता है और ह्रास को प्राप्त की वृद्धि होती रहती है। इस तरह शरीर के सब धातु (सप्तधातु, दोष और मलादि) की साम्य अवस्था या धातुसाम्यम् (Equilibrium of albuminoids of cells) क़ायम रहती है। शरीर में समाग्नि, समदोष और समधातु मल क्रिया की ही अवस्था स्वस्थ कहाती है। इस समय मन, आत्मा प्रसन्न रहते हैं और इन्द्रियां ठीक २ अपना कार्य करती हैं।

द्विविधात्मक और पञ्चात्मक पिण्ड और ब्रह्माण्ड —

शरीर के षटचक्र योगियों में अनेक सिद्धियों, मोक्ष तथा कालवञ्चन आदि के मार्ग हैं। उपनिषदों में ही ऐसा भी बताया गया है, कि जो स्थान योग द्वारा प्राप्त होता है, वह सांख्य अर्थात् ज्ञान के द्वारा भी प्राप्त हो सकता है। कीटभृङ्ग न्याय के अनुसार, जीव अपने सांस के सकार का ध्यान करते २ या सुनते २ स्वयं हकार हो जाता है। सांस के 'स' में शक्ति और 'ह' में शिव प्रतिष्ठित हैं। अर्थात् प्राणी 'हंस' 'हंस' अजपा जप के 'स' का ध्यान करते २ स्वयं शिव हो जाता है।

इसी तरह एक दूसरे उपनिषत् में यह भी बताया गया है कि ब्रह्म के समीप या मोक्ष

स्थान तक पहुंचाने वाले दो पथ हैं। एक सद्यः पथ और दूसरा क्रमशः पथ। उदाहरण में पहले ज्ञानी के पथ को हंस या शुकदेव पथ और दूसरे को पिपीलिका या वामदेव पथ कहा है। इतिहास से स्पष्ट है, कि जो 'हंस पद' को प्राप्त हो चुके हैं, उनमें शुकदेव जी के तुल्य शीघ्र ही पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होते सुना गया है। कानपुर के समीप मैथा के जंगलों में, ५० वर्ष पूर्व, एक ऐसे सिद्ध योगी बाबा मंगलीदास जी घूमा करते थे। उनसे प्रसिद्ध स्वामी भाष्करानन्द जी काशी से प्रायः मिलने आते थे। ये बाबा पहले एक स्कूल के अध्यापक थे। एकाएक उन्होंने गृहस्थ आश्रम को त्याग दिया था। आज ऐसे अनेक 'परमहंस' देखने में आते हैं जो ग़रीब पिपीलिका या क्रमशः पथ के अनुसरण करने वाले वर्णाश्रम धर्म पर चलने वालों से भी अधिक वासनाओं में फंसे हुए देखे जाते हैं। उनके लिये ऐसा करना और वैदिक 'हंस पथ' के सिद्धान्तों को भुला कर दूसरे कम ज्ञानियों (पुरुष प्रकृति, ईश्वर माया, सत् असत्, नित्य अनित्य, क्षर अक्षर, क्षेत्रज्ञ क्षेत्र, आदि को ठीक २ न समझने वालों) में भूल से बुद्धि भेद पैदा करना, भगवान कृष्ण के उपदेश के विपरीत कर्म करना है।

आगे बताया जा चुका है, कि प्राणी मात्र, प्राण के द्वारा ही जीवित हैं। प्राण शरीर के भीतर वायु और "हंस" रूप से वर्तमान हैं। हकार में पुरुष रूप से शिव और सकार में स्त्री रूप से शक्ति वर्तमान है। प्रश्नोपनिषत् में, मिथुनसंज्ञक प्राण और रयि या सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति ब्रह्म से कही गई है। दिव्य पुरुष से खं,(आकाश) वायु, मन, भूतादि की उत्पत्ति हुई है।

गीता में ब्रह्म को महत् योनि और भगवान कृष्ण ने "अहंकार" को बीजप्रद पिता बताया है। संसार में पुरुष (चैतन्य) प्रकृति (गुणात्रयों) और आकाशादि पञ्चतत्वों से कोई वस्तु रिक्त नहीं है। परा प्रकृति जीवभूता और अपरा प्रकृति अष्टधा (मन, बुद्धि, अहङ्कार और पञ्चभूत स्वरूपा) है। पुरुष को चेतन (चेतना धातु) कहा गया है। पुरुष या चित् को ही सब प्रकार के इन्द्रियार्थों (दृश्यों) या भोगों का अवसान (अन्तिम सीमा) बताया है। प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज और तम गुणत्रय ही सुख दुःख मोह के हेतु सूक्ष्मभूत हैं।

आकाश सत्व-बहुल है, वायु रजो-बहुल है, अग्नि सत्व-रजो बहुल है, अप (जल) सत्व-तमो बहुल है और पृथ्वी तमो-बहुला है।

श्रुतियों के अनुसार परमात्मा की इच्छा से ही सृष्टि हुई है। "स ईक्षांचक्रे"। विश्वकर्मा ने अपनी आत्मा से अचिन्त्य और अद्भुत जगत की सृष्टि की है। आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से अप, जल से पृथ्वी। इन पंचमहाभूतों से औषधि अन्नादि समग्र भूतों की उत्पत्ति के पूर्व हिरण्यगर्भ या महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई है। वह सुवर्ण वर्ण केश श्मश्रु वाले पुरुष हैं। उनके पीछे जगत रूप स्थावर जङ्गमात्मक भूतों की उत्पत्ति हुई फिर एक स्वतंत्र जगत पति या रक्षक जगदीश हुये। हिरण्यगर्भ की सप्तऋषियों (रश्मियों) द्वारा रक्षित ज्ञानेन्द्रियों को अपने इष्टों के जानने की सामर्थ्य मिलती है।

प्रकृति के अन्य पर्यायों को जानना भी आवश्यक है। यथा- शक्ति, अजा, अव्यक्त, प्रकृति माया, ब्राह्मी, विद्या, अविद्या, पराप्रकृति, अपराप्रकृति अव्यक्त कारण को प्रधान और सूक्ष्म नित्य सदसदात्मक प्रकृति। उसे त्रिगुणा, जगत योनि, अलिंग, प्रणव भी कहते है।

महान या बुद्ध्याख्य महत तत्व प्रकृति के सकाश से उत्पन्न होता है। उसके भी अनेक पर्याय हैं ;- यथा महानात्मा, मति, विष्णु, जिष्णु, शम्भु, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, ब्रह्मा, धृतिः, स्मृतिः। - "सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः" ऐसा वर्णन श्रुतियों में है। प्रधान या महानात्मा से अहंकार में अभिमान, कर्ता, मन्ता, आत्मा, देही, जीव आदि की उत्पत्ति हुई है। भगवान को अनन्य भाव से भजन वाले भक्तों के चार भेद भगवत गीता में दिये गये हैं —यथा (आर्त्ती या दुःखी, अर्थार्थी कामना से भजने वाले जिज्ञासु या आत्मा के जानने की इच्छा रखने वाले भक्त और ज्ञानी पुरुष प्रकृति को अभिन्न जानने वालों के उपकारार्थ ही अपने अखण्ड अद्वैत स्वरूप को अनेक तरह से धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र स्वरूप इस मानव पुरी में बसने वाले पुरुष तथा अपने सखा अर्जुन को समझाने का प्रयत्न किया। सब जगत ओंकार (शब्द ब्रह्म) से उत्पन्न है, उसी में वर्तमान है। जगत अधोमुखी ओंकार ही है।

यह कठिनाई से समझ में आने वाला स्वरूप केवल आस्तिक और श्रद्धालु पुरुषों को ही भगवान की शरण में प्राप्त होते स्वाध्याय आदि से उन्हीं अन्तर्यामी जगदीश की दया होने पर ही

से समझ में आ सकता है। सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण की अनन्यभक्ति के लिये, भगवान के शरण में प्राप्त होने वाले भक्तों को, पुरुष और लोक की रचना तथा उनमें समान भावों को जानने की आवश्यकता है। केवल अन्धभक्ति से न शास्त्रोक्त सिद्धियां और न परागति प्राप्त हो सकती है। श्रुतियों में बताया गया है कि जीव अल्पज्ञ और ईश्वर सर्वज्ञ है। अतः जब जीव-बुद्धि हिरण्यगर्भ स्वरूप या महान सर्वव्यापी अव्यक्त भाव को प्राप्त हो जाती है तब ही सब प्रकार की यौगिक सिद्धियां भी संभव हो सकती हैं।

सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् कृष्ण ने मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ अपने परम प्रिय सखा अर्जुन को उपदेश के स्वरूप में, पुरुष और प्रकृति, ईश्वर माया, क्षर, अक्षर, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, दैवी, आसुरी सम्पत्ति, वैशेषिक योग सांख्य तथा वेदान्त कर्म ज्ञान भक्तियोगादि के गूढ़ सिद्धान्तों को, इस सांसारिक जीवन युद्ध में प्रवृत्त रहते हुए जन्म मरण के चक्कर से छुड़ाने के उपाय बताये हैं। इन उपदेशों की विशेषता तथा विचित्रता ये है, कि वे केवल सनातन धर्मावलम्बी वर्णाश्रम धर्म के पालन कर्ताओं के लिये ही नहीं, किन्तु संसार के सब श्रेणी तथा दशाओं में तथा स्थानों में वर्तमान मनुष्य मात्र के हित के लिये हैं। उन्होंने भिन्न २ रुचि के अनुसार सात्विक राजस तामस धर्मों तथा आहारादि में प्रवृत्त लोगों में बिना अधिकार के बुद्धि भेद डालना या उनके पथ से विचलित करना बुरा बताया है। और हर तरह से ये ही दिखाया है कि संसार में सब प्रकार के दृश्यों तथा क्रियाओं के मूल कारण निश्चल परब्रह्म और उनकी

अचिन्त्य शक्ति ही है। यह अभिमानी जीव (पुरुष) भूल से अपने को कर्ता मान बैठा है। जीव स्वरूप कर्माशय भोग और अपवर्ग के लिये ही मिला है। यदि मनुष्य इस दुर्लभ योनि को प्राप्त कर के भी आसुरी कर्मों में ही लगा रहा तो फिर जन्म मरण के चक्कर में ही पड़ा रहेगा।

शरीर में प्राणवाही नाड़ियों (इड़ा और पिंगला) तथा सुषुम्ना, इनके परस्पर के सन्धि से मेरुदण्ड को स्पर्श करते, उसके दहनी बाईं ओर कई विशेष नाड़ीचक्र बन जाते हैं। ४५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हैलीबर्टन की फ़िजीयालोजी (Halliburton's Physiology) में इनके नर्वस गैंगलियन और प्लेक्सेज़ (Nervous ganglion or plexus) आदि ऐसे नाम लिखे हैं।

शरीर में अनेक प्राणवाही नाड़ियां (nerves) हैं। उनमें से योगशास्त्र में मुख्य दश बताई गई हैं। इनमें से भी प्रधान नाड़ी तीन हैं। सुषुम्ना (spinal cord) जो देह के मध्यभाग में स्थित मेरुदण्ड (पृष्ठवंश = vertebral column) में है। इसके दहने और बायें ओर पिंगला और इड़ा नाम की नाड़ियां हैं। (sympathetic nerves) इन तीनों के परस्पर सन्धि से रीढ़ या मेरुदण्ड की हड्डियों के सामने कई जाल या चक्र बन जाते हैं।

योरोपियन फिजियालोजी में ऐसे नाम मिलते हैं, जिनसे योगिक चक्रों का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। यथा गुदा के समीप स्थित मूलाधार चक्र(या पद्म)को इम्पार गैंगलियन (Impar-ganglion); लिंगमूल के समीप स्थित स्वाधिष्ठान चक्र को हैपोगैस्ट्रिक प्लेक्सेज़ (Hypogas-

tric plexus); नाभि देश में स्थित मणिपूर चक्र; सूर्यचक्र को सोलरप्लेक्सज (Solar plexus); हृदय स्थान में स्थित पद्म को कार्डियक प्लेक्सेज (Cardiac plexus) और कण्ठदेश में स्थित चक्र को सर्वाईकैल गैंगलियन या प्लेक्सेज (Cervical ganglion or plexus); और भ्रूमध्य में स्थित पद्म को द्विदल पद्म (Two-lobed medulla oblongata-in which two separate right & left respiratory centres exist.) या आज्ञा चक्र भी कहते हैं।

षटचक्रों के ज्ञाता योगियों को चित्त की वृत्तियों को निरोध करने के अभ्यास से आज्ञाचक्र से ऊपर स्थित मनस चक्र (Mind-apparatus or mind-body bridge) पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। आज भी भारत में ऐसे योगी वर्तमान हैं जो इस अवस्था (समाधि) में प्राणकर्म श्वास प्रश्वास (Respiratory acts) को भी रोक सकते हैं। और चालीस २ दिन तक वायु, जल, अन्नादि बिना जीवित रहते हैं। अर्थात् वे प्राण की क्रियाओं को रोक कर शरीर की अन्य जीव क्रियाओं (जैसे अहारपाक, धातुपाक, रुधिराभिसरण आदि (digestion of foods, tissue metabolism, etc.) भी रोक सकते हैं।

योगी लोग इन चक्रों में स्थित पृथ्वी, अप, तेज आदि के बीजों की धारणा से इन पर जय प्राप्त कर लेते थे। अर्थात पूरी जय प्राप्त करने पर योगियों को अग्नि जल, आदि हानि नहीं पहुंचा सकते थे। वे पृथ्वी में इच्छा ही से इतनी सरलता से प्रवेश कर सके और फिर निकल सके थे जैसे मल्लाह जल में घुस और निकल सका है। सिद्धयोगी जिस स्थान में पहुंचना चाहते थे,

जा सकते थे। वे रूई के तुल्य हलके और पत्थर की तरह गुरु (भारी) भी हो जाते थे। दूर की बातों को सुनने और दूर की या पर्दे की आड़ में रखी वस्तु को भी देख सकते थे। उन्होंने शरीरस्थ नाभिचक्र में संयम से शरीर की रचना का, सूर्यचक्र में संयम करने से भुवनों का, और चन्द्रमा में संयम से ताराव्यूह का ज्ञान प्राप्त किया था। तारा गणों की गति का ज्ञान ध्रुव में संयम से प्राप्त किया था।

योगाभ्यास सरल नहीं है। प्रत्येक मनुष्य सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। इस के लिये विशेष शरीर सम्पत्ति और साधनों की आवश्यकता रहती है। बिना गुरू के इसकी नकल नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से अनेक प्रकार के फेफड़े के रोग आमपक्वाशय सम्बन्धी तथा अनेक मानसिक और शरीर रोगों के हो जाने की संभावना रहती है। योगशास्त्रों में बताई विधियों के विपरीत योगाभ्यास करने से अनेक रोगों का भय रहता है।

शरीर में स्थित चक्रादि के ज्ञान से ईश्वर की सगुण और निर्गुण उपासना का रहस्य अवश्य ही शिक्षित मनुष्यों को ज्ञात हो सकता है। संभव, है जैसा मैंने अनुभवी योगियों से सुना है, गुरू स्वयं कभी २ शिष्यों के अधिकारानुसार दया कर उन्हें स्वयं दर्शन दे कुछ उपदेश भी कर देते हैं।

उपनिषदों में बताया गया है कि शरीर की इन्द्रियों और विशेष स्थानों में संयम करने

से अनेक प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है। योगियों में तो निरन्तर के शास्त्रोक्त विधि विहित प्राणायाम अभ्यास और चित्त संयम द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियां और भूतों पर जय की प्राप्ति बताई गई हैं। इन्हीं स्थानों में संयम द्वारा ब्रह्मनिष्ठ योगियों ने शरीर और अनेक लोकादि की रचना का ज्ञान प्राप्त किया था। ब्रह्माण्ड में पञ्चमहाभूतों के उत्पत्ति क्रम, जैसे उपनिषदों, सांख्य दर्शन तथा आयुर्वेद (सुश्रुत) में बताये गये हैं, वे सर जे० जीन्स (Sir J. Jeans) के द्वारा दूरबीन (Telescope) से निश्चित किये, नये ताराओं की रचना या अभ्युदय क्रम (Evolutionary stages of new stars) से वैज्ञानिक सिद्ध होते हैं।

इन चक्रों के वर्णन वेद के उपनिषदों और तन्त्रशास्त्र दोनों में पाये जाते हैं। चक्रों के स्थानों तथा नामों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु उनके वर्णन में भेद है। शरीर और ब्रह्माण्ड की रचना तथा शरीरस्थ चक्रादि का ज्ञान गर्भोपनिषत् , योगतत्वोपनिषत् , प्रश्नोपनिषत् योगचूड़ामणि उपनिषत , योगशिखोपनिषत् , पैङ्गल उपनिषत् , शारीर उपनिषत् , शाण्डिल्योप-निषत् , जाबालोपनिषत् , योगकुण्डलिनी उपनिषत् , वाराहोपनिषत् , प्राणाग्निहोत्र उपनिषत् , तैत्तरीय उपनिषत् , शिवसंहिता और अनेक तंत्र ग्रन्थों में मिलता है। गायत्री पुरश्चरण और गरुड़ पुराण में भी षटचक्रों के विवरण मिलते हैं। विहार के परमहंस हंसस्वरूप जी द्वारा प्रकाशित संस्कृत में "षटचक्र निरूपण" में भी सचित्र षटचक्र वर्णन मिलता है। भगवान शंकराचार्य्य जी प्रणीत सौन्दर्य लहरी में भी चक्रों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य यह है कि, इससे जिज्ञासु भक्तों में स्वान्तस्थ ईश्वर की उपासना और भजन के लिये, धार्मिक तथा सांसारिक कार्यों की सिद्धि के लिये वैदिक शारीर और ब्रह्माण्ड की रचना के ज्ञान की चर्चा का गृहस्थों में फिर प्रचार हो।

वैदिक विज्ञान केवल मानवधर्म (Religion) शरह, या मजहब से ही सम्बन्ध नहीं रखता। उसमें योगज्ञ ऋषियों द्वारा जगत के अनेक आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भावों से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान विज्ञान की बातें प्रकाशित हैं। ये मनुष्य मात्र के कल्याण की हैं। इस जगत के प्रधान आधार परंतत्त्व या भाव को विचार पूर्वक ध्यान में रख कर संसार में रहते हुये प्रत्येक मनुष्य दूसरों के संग शुभ और कल्याणकारी व्यवहार कर सकता है। इस तरह वह पिण्ड और ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व के ज्ञान तथा उस पर आधारित मानवधर्म के आचरण से अपना जीवन भी सुख और शान्ति मय बना सकता है। सांसारिक व्यवहारों में अरुचि रखने वाले विशेष प्रकृति के विरक्त मनुष्यों और योग के ऐश्वर्य बलों की सिद्धि चाहने वालों के लिये भी अनेक प्रकार के योग और उनके अभ्यास की योगविधियां बताई गई हैं।

यद्यपि आजकल के युवकों को ऐसी बातों में श्रद्धा और विश्वास नहीं है, किन्तु इन दर्शन शास्त्रों में अनेक ऐसे तात्विक विषय वर्तमान हैं, जिनको, जैसा कि आगे बताया गया है, आज योरोपियन्स द्वारा भौतिकवादी फिज़िक्स में मिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उदा-

हरणार्थ वैशेषिक के पाञ्चभौतिक समनस्का इन्द्रियार्थ (Sense-data, particles and wavicles or photons) मन, आकाश, दिशा, काल, (Ether, Space & Time) ही उनकी नवीन भौतिक फ़िज़िक्स के आधार बनाये गये हैं। और वैशेषिक के परापरत्व तथा सांख्य दर्शन के भूतमात्रा या तन्मात्र सिद्धान्त, नवीन फिजिक्स में रैलेटिविटी (Relativity) और क्वेन्टम थियोरीज़ (Quantum Theories) कहाती हैं। वस्तु विशेष के तत्वज्ञान के लिये योग दर्शन के संयम विधि का जानना आवश्यक है —

ध्यान के आधार (ध्येय या शरीर के, भीतरी या बाहरी लक्ष्य देश या विषय जैसे रुचिकर किसी दृश्य या भोग) में चित्त की स्थापना को ही 'धारणा' कहते हैं। जैसे शरीर के नासिकाग्रभाग, नाभिचक्र, मूलाधारपद्म, हृदय आदि। ध्येय देश या लक्ष्य (किसी एक तत्व) में चित्त के एक तानता सदृश प्रवाह (continuity) को ही "ध्यान" (concentration of mind) कहते हैं। और ध्येयाकार चित्त की स्वरूपावस्था को ही समाधि कहते हैं। धारणा ध्यान और समाधि इन तीनों के एकीकरण को ही 'संयम' कहते हैं।

विभिन्न प्रकार के संयमों द्वारा योगज्ञ ऋषियों ने अनेक ऐसे गूढ़ तत्वों का साक्षात्कार किया था, जो आज भी दुनियां के बड़े २ बुद्धिमानों और विज्ञानियों (scientist) की समझ में नहीं आ रहे हैं, और न वहां तक अभी उनकी पहुंच हो सकी है। उदाहरणार्थ, फोटन्स या

सैन्सडेटा (Photons or Sense-data) में सत्वांश या मानसिक तत्व अभी अज्ञात है।

❀ – अतः वेद 'अपौरुषेय' (Revelation) हैं — ❀ रोज़ काम में न आने वाले अनेक वैदिक शब्दों के आशय आज भी मौजूद, महर्षि यास्क के निरुक्त से समझ में आ सकते हैं। उनके अनेक गूढ़ विषय, वर्तमान वेदों के मन्त्रों, उपनिषदों तथा वेदों से निकली अनेक संहिताओं और पुराणों की सहायता से आज भी उपकारी और वैज्ञानिक सिद्ध होते हैं। यज्ञादि के विषय हास्य योग्य नहीं है। वेद के मन्त्र गड़रियों के गीत नहीं हैं। केवल वैदिक सृष्टि क्रम तथा तत्वज्ञान पर आश्रित या आधारित अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि लक्षणों वाले मानवधर्म को ही नवीन वैज्ञानिक फ़िजिक्स नहीं हिला सकी। किन्तु अन्य धर्मों के आधार तो चलायमान होते देखे जा रहे हैं। अंगरेजी में नीचे दिये इसके समर्थक प्रमाण योरोपियन्स के नवीन वैज्ञानिक ग्रन्थों से दिये जाते हैं। आर्य शास्त्रों जैसे वेद, दर्शन, स्मृति और गीता आदि सब ही में पुरुष और प्राणियों या जीवों के मन, अन्तःकरण, चित्त, आत्म या बुद्धितत्व का, अनादि काल से सम्बन्ध जारी है। जगत की उत्पत्ति प्राण और रयि, पुरुष और प्रकृति, ईश्वर और माया (गुणत्रयों की साम्यावस्था) या पुरुष और चितिशक्ति से ही है। इसी विज्ञान के आधार पर अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों की उत्पत्ति हुई है। उपनिषदों में जीव और परमात्मा की समतावस्था को ही योग कहते हैं। जीव अल्पज्ञ और ईश्वर सर्वज्ञ बताया गया है।

Religion—we use the word in its widest significance—has travelled as far from crude ... It has to be admitted, however, that in its outlook and by reason of formulated and static creeds Religion has lagged behind Science in achieving wider vision.... The relations of science and religion have become altered.... As knowledge has grown, so have men's religious beliefs passed from one phase to another in the Light of To-day.

It is probably true that the bulk of educated men and women of our day are alienated from all organised forms of religion. As Dr. Maurice Wilson remarks, "The great majority of them are very far from being opposed, or even indifferent, to religion : they are not atheistic. But they find the popular, traditional, and apparently authorised presentation of Christian theology by the Churches confused and contradictory, or superficial and obscurantist, and as it stands, to them impossible" (Evolution in the Light of Modern Knowledge).

Dr. Wilson puts the matter in a nutshell when he says :

२३

It has been the universal assumption in the past that there were two separate spheres of existence, ... distinct in kind. ... 'natural' and "supernatural,"......................Parts of Christian theology have been occupied with them. These were "first thoughts." But now the human mind—is rejecting the whole conception ...It identifies in kind what we have called the supernatural with the natural. It makes the spiritual and the natural continuous and equally divine... This identification is, as it were, regularised as well as illustrated by the idea of evolution. ... There is continuity. To us intelligence, mind, spirit, is now seen as one long continuous chain, of which we see neither beginning nor end. We are perhaps at least as far from the top of it as we are from the bottom.

It is Mr. Middleton Murry makes a remark ... truth ... Believers in evolution, and believers in traditional Christianity ... are both committed to a belief in the possibility of a new kind of man.

"Modern Science & Modern Thought (1885) by Samuel Laing...

created ... a stir...it attacked current theologies and current dogmas ... is now very much behind the times..." Science has advanced by leaps and bounds within the last thirty years; in ... Laing's book explaining "modern" Science, you will not find the word "electron" for nothing was known about that; you will look in vain for "radio activity" ... "relativity" theory, or the "quantum." To-day these words spell magic; and like-wise ... "chromosomes" and genes" in biology, "hormones" and "ductless gland's in physiology and so on..."

They regard consciousness as fundamental; everything else is to be derived from it ... The motive of science is the discovery of facts about the universe itself ... We cannot conceive a universe made out of nothing ... That the physical universe ... essentially immaterial in its nature, that the electron theory ...... is accepted scientific truth ...

Ref. Extracts from Outline of Modern Belief, Science, & Thought, Edited By J.W.N. Sullivan and Walter Grierson (The Inquiring Man). Pages i & 1 of Part 1 and Pages 510 & 511 of Part 9.

ऊपर लिखे विषयों के समर्थन तथा स्पष्टीकरण के लिये कुछ प्रमाण —

आर्य शास्त्रों के आधार पर पिण्ड और ब्रह्माण्ड या पुरुष और लोक के रचना के मूल तत्वों तथा ऊपर प्रकाशित अन्य विचारों के समर्थक कुछ आप्त शब्दों को उदाहरणार्थ उद्धृत करना आवश्यक है। इनसे वेदों के मन्त्रों में प्रकाशित भावों की सत्यता तथा वैज्ञानिकता आज की नवीन साइन्स (New or Modern European Sciences) के दृष्टिकोण से भी सिद्ध होती हैं। ये योगी और गृहस्थों दोनों के प्राण संयमार्थ उपयोगी हैं।

आज हिन्दू नामधारी आर्यजाति में प्रचलित मानवधर्म और उसके सिद्धान्तों के आधार पर ही उत्पन्न अनेक सन्त पन्थों की अहिंसा, सत्य, अस्तेयादि पर आश्रित वर्ण आश्रमी व्यावहारिक धर्म स्थित है। अहिंसा भक्त इस देश में उक्त यम-नियमों को नष्ट भ्रष्ट करके, वर्तमान मनुष्यों द्वारा नये सामाजिक विधानों की रचना से सुख और शान्ति की चिरस्थाई स्थापना हो, ऐसा असंभव है। ये दोनों तो वहीं स्थिर रह सकेंगी जहां वेदोक्त दैवी यम नियमादि का पालन होता रहेगा। वेदों के सम्बन्ध से उनको न माना जाय यह दूसरी बात है। ईसा ने उनमें से १० यम नियमादि का उपदेश किया था। बुद्ध भगवान ने चार का ही प्रचार किया था। वर्तमान युग में हमारे संसार प्रसिद्ध महात्मा गांधी जी ने सत्य और अहिंसा की आवश्यकता स्वयं अपने प्राण की आहुति से सिद्ध करके दिखादी।

इस चतुर वर्णाश्रम धर्म के आधार तथा स्वरूप को भगवान श्री कृष्ण ने अपनी गीता में चतुर्वर्णों के योग्य समझाया है। और दैवी तथा आसुरी सम्पत्ति प्रधान मनुष्यों की जातियों के प्राकृत तथा आहार, विहार, व्यवहारादि में मद प्रकाशक भावों को भी दिखाया है। हमारे देश के लोग इनके तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। विदेशी मानव प्रकृति शास्त्र के विशेषज्ञों का स्थिर मत ये है कि मनुष्य जाति का खून (blood groups) विभिन्न देशों में चार प्रकार के ही भिन्न हैं। एक और पांचवा बताया जाता है। किसानों और पशु पालकों का कहना है कि पशुजाति में भी दोगली सन्तानें प्रायः दुःख पहुंचाने वाली (जैसे खच्चर) होती हैं।

वैदिक दैवी यम नियम तो, इस सृष्टि में एक अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप विभु शिव (कल्याणकारी) तत्व और उससे सदा अपृथक रहने वाली जगज्जननी शक्ति के ऐक्य तथा अभेद ज्ञान पर ही आधारित हैं। इनके समर्थन में जिज्ञासुओं के तोषणार्थ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं:—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत (ऋगवेद और यजुर्वेद)। ❀। हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥ ❀ ॥ (महाभारत)। हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः महानिति योगेषु विरंचिति चाप्यजः। ❀ ❀। अहं सर्वाणि भूतानि भूतात्मा भूतभावनः। शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनुरिति। (श्रीभागवत् स्कन्ध ६, अध्याय १६)

"तत्व" और तत्त्वज्ञानोत्पत्ति प्रकार— । सतश्च सद्भावोऽसतश्चाऽसद्भावः।

सत सदिति गृह्यमाणं यथाभूतमऽविपरीतं तत्त्वं भवति, असच्चाऽसदिति गृह्यमाणं यथाभूतमविपरीतं तत्त्वं भवति ।

समाधिविशेषाभ्यासात् ॥ ३८ ॥

स तु प्रत्याहृतस्येन्द्रियार्थेभ्या मनसा धारकेण प्रयत्नेन धार्यमाणस्यात्मना संयोगस्तत्त्वबुभुत्साविशिष्टः ··· तदभ्यासवशात् तत्त्वबुद्धिरुत्पद्यते ॥३८॥ ❀ अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ॥ ४२ ॥ (प्रसन्नपदापरिभूषित न्यायभाष्य अ० ४ आह्निक २)

आत्मेन्द्रिय मनोर्थानां सन्निकर्षात्प्रवर्तते । ··· ··· सशरीरस्थ योगज्ञास्तद्योगमृषयो विदुः ॥ आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया । दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् । इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् । शुद्धसत्वसमाधानात्तत्सर्वमुपजायते । ॥ चरकसंहिता ॥

मायां च प्रकृतिं विद्यात् । मायिनं तु महेश्वरं । प्रकृतिस्तुत्रयोविंशतितत्त्वकारणानि सत्वादि नामक सूक्ष्मद्रव्याणि असंख्यानि गुणशब्दश्च तेषु पुरुषोपकरणत्वात् पुरुषबन्धकत्वाच्च प्रयुज्यते । तच्चगुणत्रयं सुखदुःखमोहधर्मकत्वात् सुखदुःखमोहात्मक मुच्यते । पुरुषाणां सर्वार्थसाधकत्वात् राजामात्यवत् प्रधानमुच्यते, जगदुपादानत्वात् प्रकृतिर्जगन्मोहकत्वाच्च माया इत्युच्यते । वैशेषिकादिभिश्च स्व स्व परिभाषया परमाण्वादि शब्दैश्चोच्यते । नामरूपविनिर्मुक्तं यस्मिन् सन्तिष्ठते जगत् । तमाहुः प्रकृतिं केचिन्मायामेके परे त्वणून । ❀ ❀ त्रिगुणात्मकं मायाख्यं प्रधानमिति ❀

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका । सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्याभूता सनातनी ॥ ❀ न तु प्रपञ्चस्य अत्यन्ततुच्छता अत्यन्त विनाशिता वा वेदान्त सिद्धान्तः 'नाभाव उपलब्धेः', 'भावे चोपलब्धेः' इति वेदान्त सूत्राभ्यामेव···वैधर्म्याच 'न स्वप्नादिवत्' इत्यादि । ❀

अन्यथा 'सन्ध्ये सृष्टिराह हीति' वेदान्तसूत्रेणैव स्वप्ने सृष्ट्यवधारणं विरुध्येत न स्वप्नादिवदिति वेदान्तसूत्रञ्च जाग्रतप्रपञ्चस्य केवलमानसत्वमेव निराकरोति । एतेन स्वप्नादिदृष्टान्तैः प्रपञ्चस्य मनोमात्रत्वाभ्युपगमो नवीनवेदान्तिनामपसिद्धान्त एव । वेदान्तसूत्रेणापि स्वप्नतुल्यत्वाभाव निर्णयात् ।

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

पार्थिवस्य अणोः गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः, ··· तेषामहङ्कारः, अस्यापि लिङ्गमात्रं सूक्ष्मो विषयः, लिङ्गमात्रस्याप्यलिङ्गं सूक्ष्मो विषयः, न चालिङ्गात्परं सूक्ष्ममस्ति नन्वस्ति पुरुषः सूक्ष्म इति, ··· ॥ (पातञ्जलयोगदर्शन) ।

सृष्टिक्रम — "एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ सांख्योक्तसृष्टिक्रमे स्पष्टैव श्रुतिरस्ति यथा गोपालतापनीये । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीत् तस्मादव्यक्तमेवाक्षरं तस्मादक्षरान्महत् महतो (from consciouness) वै अहंकारः (I-making) तस्माद्वा अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राणि तेभ्यो भूतादीनि इति । (गोपालतापनीय उपनिषत्)

वेदान्तसूत्रैरपि मुख्यवाक्यैरेव सूचितका……।" विज्ञान भिक्षुयोग वार्तिक—(साधनपाद)

"एवं ह वै तत्सर्वं परे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते पृथिवी च पृथिवीमात्रा इत्यादिना …परमात्मनि सर्वं त्रयोविंशतितत्त्वं तिष्ठति समुद्रे नदनदीवदित्युक्तम् अतः चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रत्यक्षश्रुत्या स्मृत्यनुमेयश्रुत्या च सिद्धानि। अद्वैतश्रुतिस्तु न तासां बाधिका व्यवहार परमार्थभेदेन विषयभेदात्।

"इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति॥ २॥ स ईक्षांचक्रे … …॥ ३॥ स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्॥ मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपोमन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च॥ ४॥ प्रश्नोपनिषत्॥ वायुः प्राणस्तथाकाशस्त्रिविधो जीवसंज्ञकः। सजीवः प्राण इत्युक्तो…॥ सकारं च हकारं च जीवो जपति सर्वदा॥ उप०। 'प्राणान क्षेत्रज्ञरूपे धारयन् जीवः उच्यते"॥ विष्णुसहस्रनाम॥ प्राणंदेवा अनुप्राणन्ति "मनुष्याः पशवश्चये। प्राणोहि भूतानामायुः।"॥ तैत्तरीय उपनिषत्॥ सर्वाणि…भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते।॥ छान्दोग्योपनिषत्॥ दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः…॥ २॥ एतस्माज्जायते मनः।३।॥ मुण्डकोपनिषत्॥ तस्मै…प्रजापतिः… मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं च…।॥ ४॥ आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा…मूर्ति रेव रयिः।५।॥ प्रश्नोपनिषत्॥ वायुस्तन्त्रयंत्रधरः… प्रवर्त्तकश्चेष्टानाम… भगवान वायुः, स्थित्युत्पत्ति विनाशेषुभूतानां कारणम्। (चरक) ❀ प्राणाह्यभन्तरोनृणां बाह्यप्राणगुणान्वितः। धारयस्य विरोधेन शरीरं…।॥ सुश्रुत॥

आभ्यन्तरः प्राणोऽग्निषोमादिः, येन प्राणी जीवति । अग्निः सोमो वायुः सत्वं रजस्तम पञ्चेन्द्रियाणि, भूतात्मा इति द्वादश: प्राणाः ॥ ❀ ॥ तत्र वायो (यु) रात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य इति ॥ ❀❀ ॥ तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते, स्वशास्त्रसिद्धान्तात् ॥२१॥ ❀ ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् । ...प्राणायतनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ सुश्रुत ॥

सर्वभूतचिन्ताशारीर—सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम । तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवोदकानां भावानाम् । ३ । तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्ग एव; तल्लिङ्गाच्च महतस्तल्लक्षण एवाहङ्कार उत्पद्यते, स त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति; तत्र वैकारिकादहङ्कारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा—श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति, तत्र पूर्वाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकं मनः; भूतादेरपि तैजससहायात्तल्लक्षणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा—शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रमिति; तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः; तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता । ४ ।

"न... तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात् । अव्यक्तान्महानिति बुद्धितत्वं, तत्तु सत्वसमुद्रेकाभि-

मलस्फटिकोपलप्रख्यं चिच्छायासंक्रान्तिप्राप्तचैतन्यं पुरुषवज्ञानात्मकमध्यवसेयविषयं निश्चितार्थ-कारणमित्यर्थः । उत्पद्यते व्यक्तीभवति" । (डल्हन टीकाकार)

आत्मच्छायासंक्रान्तिप्राप्तचैतन्यं । (पातञ्जल योगदर्शन)

तत्र, बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः; कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानन्दविसर्ग विहरणानि । ५ । अव्यक्तं महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः; शेषाः षोडश विकाराः । स्वः स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं; स्वयमध्यात्मं; अधिदैवतं तु—बुद्धेर्ब्रह्मा, अहङ्कारस्येश्वरः, मनसश्च-न्द्रमाः, दिशः श्रोतस्य, त्वचोवायुः, सूर्यश्चक्षुषः, रसनस्यापः, पृथ्वी घ्राणस्य, वाचोऽग्निः, हस्तयो-रिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रः, प्रजापतिरुपस्थस्येति । ७ । तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः, पुरुषः पञ्चविंशतितमः कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति । सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्ति-मुपदिशन्ति क्षीरादींश्चात्र हेतूनुदाहरन्ति । ८ । अत ऊर्ध्वं प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यवैधर्म्ये व्याख्या-स्यामः । तद्यथा—उभावप्यनादी, उभावप्यनन्तौ, उभावप्यलिङ्गौ, उभावपि नित्यौ, उभावप्यनपरौ, उभौ च सर्वगताविति; एका तु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति, बहवस्तु पुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणा अबीजधर्माणोऽप्रसवधर्माणो मध्यस्थधर्माणश्चेति । ९ । तत्र कारणानुरूपं कार्यमिति कृत्वा सर्व एवैते विशेषाः सत्वरजस्तमोमया भवन्ति; तदञ्जनत्वा-त्तन्मयत्वाच्च तद्गुणा एव पुरुषा भवन्तीत्यके भाषन्ते । १० । स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा । परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः । ११ । (सुश्रुत शारीरस्थान अ० १)

चेतनाधातु–तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्त्तते, स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्त्ता मन्ता वेदिता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवोऽव्ययो नित्यः गुणी ग्रहणं प्रधानमव्यक्तं जीवोज्ञः पुद्गलश्चेतनावान् विभुर्भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति । ··· ॥ ८ ॥ ❀❀ तत्रास्य ··· ··· आकाशात्मकं शब्दः श्रोत्रं लाघवं सौक्ष्म्यं विवेकश्च । वाय्वात्मकं स्पर्शः स्पर्शनं च रौक्ष्यं प्रेरणं धातुव्यूहनं चेष्टाश्च शारीर्यः । अग्न्यात्मकं रूपं दर्शनं प्रकाशः पक्तिरौष्ण्यञ्च अबात्मकं रसो रसनं शैत्यं मार्दवं स्नेहः क्लेदश्च । पृथिव्यात्मकं गन्धो घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्च ॥१२॥ 'लोकसंमतः पुरुषः–यावन्तो हि लोके भावविशेषाः, तावन्तः पुरुषे,' ❀

तस्य पुरुषस्य पृथिवी मूर्तिरापः क्लेदस्तेजोऽभिसन्तापो वायुः प्राणो वियच्छुषिराणि ब्रह्मान्तरात्मा । यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके तथा पुरुषेऽप्यान्तरात्मिकी विभूतिः, ब्रह्मणो विभूतिर्लोके प्रजापतिरन्तरात्मनो विभूतिः पुरुषे सत्त्वम्, यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहङ्कारः सः, आदित्यस्त्वादानम्, रुद्रो रोषः, सोमः प्रसादः, वसवः सुखम्, अश्विनौ कान्तिः, मरुदुत्साहः, विश्वेदेवाः सर्वेन्द्रियाणि सर्वेन्द्रियार्थाश्च, तमो मोहः, ज्योतिर्ज्ञानम्, यथा लोकस्य सर्गादिस्तथा पुरुषस्य गर्भाधानम्, यथा कृतयुगमेवं बाल्यम्, यथा त्रेता तथा यौवनम्, यथा द्वापरं तथा स्थाविर्यम्, यथा कलिरेवमातुर्यम्, यथा युगान्तस्तथा मरणमित्येवमनुमानेनानुक्तानामपि लोकपुरुषयोरवयवविशेषाणामग्निवेश सामान्यं विद्यात् ॥ ६ ॥

प्रसंगवश भारत के वर्तमान युगीय साइन्स प्रेमी शिक्षित युवकों के विचारार्थ आर्य और नवीन योरोपियन वैज्ञानिक ग्रन्थों से नीचे समान भाव प्रकाशक थोड़े वचन, वेदों के अपौरुषेयत्व को दिखाने के लिये उद्धृत किये गये हैं। इनमें से कई योरोपियन्स के आविष्कार कहे जाते हैं। इन दोनों को विचारपूर्वक मनन करने तथा ऐसे तुलनात्मक अनुसंधानों से ही योरोपियन विज्ञान की अपरिपक्व दशा या कमी समझ में आ सकेगी।

यः सर्वव्यापी ···तत् शुक्लं यत् शुक्लं तत् सूक्ष्मं, यत् सूक्ष्मं तत् वैद्युतं, यत् वैद्युतं तत् परं ब्रह्म··· स रुद्रः ···स भगवान महेश्वरः। ३। अथ शिर उपनिषत् (वैद्युतं = स्वप्रकाशं)॥ अग्निरपि रुद्र उच्यते। शब्दं कुर्वाणो मेघोदरस्थो द्रवति इति। (निरुक्त दैवतकाण्ड)

"ॐ ··· । ··· तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः (Cf. Space, ether) सम्भूतः। आकाशाद्वायुः (Cf. gases) वायोरग्निः (Cf. electricity, light & heat) अग्नेरापः (Cf. watery fluid)। अद्भ्यः पृथिवी (Cf. solid body) पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। ···" तै. उ. ब्रह्मानन्दवल्ली। २।

नावस्तुनो वस्तु सिद्धिः। ७८, अ. १। नाणुनित्यता तत् कार्यत्वश्रुतेः। ८७, अ. १। (सांख्य दर्शन)

नोट—प्रकृति पर्यायाः—अव्यक्तं कारणं यत तत् प्रधानमृषिसत्तमैः प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम्॥ शब्दस्पर्शविहीनं तद् रूपादिभिरसंयुतम्। त्रिगुणं तत् जगद्योनिरनादि-

प्रभवाप्ययम् ॥ ❀ ॥ महानतत्व (बुद्धि) तस्य पर्यायाः —महानात्मा मतिर्विष्णुर्जिष्णुः शम्भुश्च वीर्यवान् । बुद्धिः प्रज्ञापलब्धिश्च तथा ब्रह्मा धृतिः स्मृतिः ॥ पर्यायवाचकैरेतैर्महानात्मा निगद्यते । सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥ ❀ ॥ (सांख्यसार) । महान्, बुद्धिः, मतिः, प्रज्ञा, संवित्तिः, ख्यातिः, चितिः, स्मृतिरासुरी हरिः, हरः हिरण्यगर्भ इति पर्यायाः (सांख्यकारिका)

सत्वात्मिका बुद्धि – तत्र बुद्धेः सात्त्विकं रूपं चतुर्विधं भवति धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति । तत्र धर्मो नाम वर्णिनामाश्रमिणां च समयाविरोधेन यः प्रोक्तो यमनियमलक्षणः स धर्मः। तत्र पञ्च यमाः। पञ्च नियमाः । अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा । शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । एभिर्यमनियमैर्यः साध्यते स धर्मः । ❀ धारणार्थो धृञित्येष धातुः शाब्दैः प्रकीर्तितः । दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणात् धर्म उच्यते ॥ साङ्ख्य कारिका

त्रिविधं खलु सत्वं शुद्धं राजसं तामसमिति । ··· तद्यथा—ब्राह्मं, आर्षं, ऐन्द्रं, याम्यं, वारुणं, कौबेरं, गान्धर्वं इत्येवं शुद्धस्य सत्वस्य सप्तविधं भेदांशं विद्यात् कल्याणांशत्वात् । ❀ शूरं, आसुरं, राक्षसं, पैशाचं, सार्पं प्रैतं, शाकुनं इत्येवं राजसस्य सत्वस्य षड्विधं भेदांशं विद्यात् रोषांशत्वात् । ❀ पाशवं, मात्स्यं, वानसपत्यं इत्येवं तामसस्य सत्वस्य त्रिविधं भेदांशं विद्यान्मोहांशत्वात् । (चरक)

अथ ये हिंसामुत्सृज्य विद्यामाश्रित्य महत्तपस्तेपिरे ज्ञानोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति

तेऽर्चिरभिसम्भवन्ति, अर्चिषोऽह्नः अह्न आपूर्यमाणपक्षम्, आपूर्यमाणपक्षादुदगयनम्, उदगयनाद्देवलोकम्, देवलोकादादित्यम्, आदित्याद्वैद्युतम्, वैद्युतान्मानसम्, मानसः पुरुषो भूत्वा ब्रह्मलोकमभिसम्भवन्ति, ते न पुनरावर्त्तन्ते शिष्टा दन्दशूका यत इदं न जानन्ति तस्मादिदं वेदितव्यम् १४ । ६ ॥ (निरुक्त परिशिष्ट) ❀ जीव–अहङ्कारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च संस्मृतः । आत्म देही च जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ एकादशेन्द्रियदेवाश्च— दिग्वातार्क– प्रचेतोश्विवन्हीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः चन्द्रश्च । (सांख्यसार)

रजस्तमसोरभिभवात् शान्ता वृत्तिरुत्पद्यते सत्वस्य धर्माद्या । सत्वतमसोरभिभवात् रजसो घोरा वृत्तिरुत्पद्यते अधर्माद्या । सत्वरजसोरभिभवात् तमसो मूढा वृत्तिरुत्पद्यते अज्ञानाद्या ।

बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि पञ्च तानि सविशेषं गृह्णन्ति अविशेषमपि विषयं गृह्णन्ति । अत्राह–कस्य सविशेषं विषयं गृह्णन्ति कस्य निर्विशेषमिति । अत्रोच्यते शब्द-स्पर्शरसरूपगन्धाः पञ्च देवानां तन्मात्रसंज्ञिता निर्विशेषाः केवलसुखलक्षणत्वात् । यस्मात्तत्र दुःखमोहौ न स्तः तस्मान्निर्विशेषास्ते इति । तथा हि विशिष्यन्ते शान्तघोरमूढत्वादिनेति विशेषाः तैः सह सविशेषाः, केवला निर्विशेषा इति तात्पर्यम् । एवं शब्दादयो मनुष्याणां सविशेषाः सुख-दुःखमोहयुक्ता इत्यर्थः । देवानां तु बुद्धीन्द्रियाणि निर्विशेषं सुखात्मकं प्रकाशयन्ति । सांख्यकारिका

"विश्वकर्मा विमना आद्विहाया० (ऋ० सं० ८, ३, १७, २)" । आत्मानमधिकृत्य विश्वकर्मणो व्याख्यानम् अध्यात्मम् ··· सोऽयमात्मा प्रतिशरीरं क्षेत्रज्ञत्वेन स्वविशेषेण विज्ञानशक्त्याधिकार-

मनुभवन् हिरण्यगर्भावस्थमधिदैवमित्युच्यते । "यत्रा सप्तऋषीन्" 'यत्र इमानि सप्तऋषीणानि इन्द्रियाणि' द्रष्टृणि, इन्द्रियाणि 'ज्योतींषि' एकमाहुः । क ? बुद्धौ तस्यामपि ह्येतेषामेकत्वमस्तीति । किं तत्रैव ? न—इति उच्यते "पर एकमाहुः न यतः परतरमस्ति तस्मिन् परतरे विश्वकर्मणि यदत्र शक्तिमात्रं यदुपविष्टं भात् परमात्मा नित्यतृप्तः । "यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः" । "यत्र एतानि सप्तर्षीणानि" रसानामाकर्षणानि, द्रष्टृणि वा रश्मीन् , "ज्योतींषि" "एकं" भवन्ति, अविभागमुपगच्छन्ति, मण्डले-अविभागः । इन्द्रियाणां संदर्शयिता' तत्कृतत्वाद् विषयविषयिसम्बन्धस्य, इन्द्रियाणां च तदधिष्ठितानां प्रतिविषयमालोकसामर्थ्योपजननात् तस्य विश्वकर्मणः परमात्मनः ।' निरुक्त

प्रकाशक्रिया,स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥ ❀❀ प्रकाशशीलं सत्त्वं, क्रियाशीलं रजः, स्थितिशीलं तम इति, एते गुणाः ··· । तदेतत् दृश्यं भूतेन्द्रियात्मकं भूतभावेन पृथिव्यादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमते, तथेन्द्रियभावेन श्रोत्रादिना सूक्ष्मस्थूलेन परिणमत इति । अन्योन्याङ्गाङ्गिभावेन उत्पादितेऽपि द्रव्ये प्रकाशगुणः सत्त्वस्यैव क्रियागुणो रजस एव स्थितिगुणस्तमस एवेत्यतो न प्रकाशादिशक्तिविभागस्य सम्भेदः सम्मिश्रणमित्यर्थः । ❀ एतद्-गुणत्रयमेव कार्य्यकारणभावापन्नं दृश्यमुच्यते नास्ति ततोऽतिरिक्तं दृश्यान्तरमित्यर्थः । अतएव च गुणा न्यायवैशेषिकाभ्यां द्रव्याष्टकरूपेण विभज्यन्ते । वेदान्तिभिस्तु माया इत्युच्यते । (योगदर्शन व्यासभाष्य तथा विज्ञानभिक्षु वार्तिक)

"लोको हि द्विविधात्मक···आग्नेयः सौम्यश्च ॥ "—सुश्रुत । " द्वयं···न तृतीयमस्ति ।

आर्द्रञ्चैव शुष्कञ्च यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्रं तत्सौम्यथ ॥ ···अग्नीषोमयोर्हैतावती विभूतिः प्रजातिः ॥ २३ ॥ (शतपथ ब्रा० काण्ड १, प्रपाठक ५, ब्रा० २, अ० ४, मन्त्र २३)। "अग्नीषोमात्मकं विश्वम्···। रौद्री घोरा या तैजसी तनूः ···स्थूलसूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसी ॥ द्विविधा तेजसो-वृत्तिः (Vibratory or electrical energy) सूर्यात्मा चानलात्मिका तथैव रसशक्तिश्च (Chemical energy) सोमात्मा चानलात्मिका ॥ २ ॥ वैद्युतादिमयं तेजो मधुरादिमयो रसः। ··· ॥ ३, ४ ॥ ऊर्ध्व शक्तिमयं सोम अधोशक्तिमयोऽनलः। ··· ॥ ५ ॥ (बृहज्जाबालोपनिषत्)

तत को वैश्वानरः? ❀ इन्द्रादित्यवाय्वाकाशोदकपृथिव्यादयश्च पृथक् पृथगेव वैश्वानरत्वेन विज्ञायन्ते। ❀ कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात्कालस्तु कारणम् ॥

"भूतस्य" अस्य उत्पन्नस्य स्थावरजङ्गमस्य जगतः 'हिरण्यगर्भः' एव 'अग्रे' 'समवर्त्तत' सम्भवत् उदपद्यत। तमुत्पन्नमन्विदं सर्वमुत्पेदे स च पुनरग्रे जातः सन् तस्य पश्चाद्भूतस्य एकः' असपत्नः अद्वितीयः 'पतिः' पाता रक्षिता ईश्वरः स्वतन्त्रः 'आसीत्' ॥ निरुक्त

महदादिक्रमेण पंचभूतानाम् ॥१०॥ ❀ दिक्कालावाकाशादिभ्यः ॥१२॥ अ० १ ॥ नाशुचित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ॥ ८७ ॥ अ० ६ सांख्य दर्शन

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥ १० ॥ ❀ इतोऽवधिभूतादिदं दूरमन्तिकं चेति यस्माद्वस्तुनः प्रत्ययो भवति तद्वस्तु दिश्यं लिङ्गम्। तेन हि दिगनुमीयते। ··· दूरत्वमन्तिकत्वं च।

यदेतद्दैशिकं परत्वमपरत्वं चाख्यायते। ततो हि दूरमन्तिकमिति बुद्धिरुत्पद्यते। (अ० २ आ० २)

परत्वापरत्वबुद्धेरसाधारणं निमित्तं काल एव। ··· तद्बुद्धेरसाधारणं बीजं दिगेव।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥ ६॥ ❀ ❀ इदानीं क्रमप्राप्तं काल–लक्षणप्रकरणमारभमाण आह–इतिकारो ज्ञानप्रकारपरः प्रत्येकमभिसंबध्यते तथाचापरमितिप्रत्ययो युगपदितिप्रत्ययः, चिरमितिप्रत्ययः, क्षिप्रमितिप्रत्ययश्च काललिङ्गानीत्यर्थः।

गुणैर्दिग् व्याख्याता ॥ २४ ॥ ❀❀ कारणे कालः ॥ २५ ॥

गुणैः सकलद्वीपवर्तिपुरुषसाधारणपूर्वापरादिप्रत्ययरूपैः सकलमूर्तनिष्ठपरत्वापरत्वलक्षणैश्च दिगपि व्यापकत्वेन व्याख्यातेत्यर्थः। परत्वापरत्वयोरुत्पत्तौ संयुक्तसंयोगभूयस्त्वाल्पीयस्त्वविषयापेक्षाबुद्धेः कारणत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्। ❀ परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययकारणे द्रव्ये काल इति समाख्या। नचैतादृशः प्रत्ययः सर्वदेशपुरुषसाधारणः कालस्य व्यापकतामन्तरेण संभवतीति तस्य व्यापकत्वं परममहत्त्वयोग इत्यर्थः। (उपस्कार अ० ७ आ० १)

परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः (२३) कर्मभिः कर्माणि (२४) गुणैर्गुणाः(२५) इतश्च परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावं प्रतिपद्यामहे ॥ भाष्य ॥ (अ० ७ आ० २)

रूपरसगन्धस्पर्शाः ··· परत्वापरत्वे ··· गुणाः ।६॥ ❀❀ परत्वापरत्वयोरन्योन्याश्रयनिरूप्यतया दिक्काललिङ्गत्वाविशेषसूचनाय च द्विवचनम् । (अ० १ आ० १)

कार्यविशेषेण नानात्वम् ॥ १३ ॥ आकाशकालदिगाख्यमेकं द्रव्यमिति। यतोऽसौ महता

३९

प्रयत्नेनाकाशे स्पर्शवदात्ममनसां व्यतिरेकमाह न कालदिशोः। (अ० २ आ० २ वैशेषिक)

Note:– परत्वापरत्व (cf. Relativity theory) आकाशदिक–काल (cf. Ether, Space & Time-a single entity).

सप्त ऋषयः ॥२५॥ सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः। सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे रश्मय आदित्ये सप्त रक्षन्ति ··· अथाध्यात्मं–सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तम्यात्मनि सप्त रक्षन्ति। देवाः ॥२६॥ देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा। य एते "देवाः" रश्मय नित्यम् ··· अन्तरिक्षस्य सर्वतो यान्ति। विश्वेदेवाः ॥२७॥ 'सर्वे देवाः' त एव रश्मयः ··· । ❀ वसवः ॥ २६ ॥ वसवो यद्विवसते सर्वमग्निर्वसुभिर्वासव इति समाख्या, तस्मात् पृथिवीस्थानाः। इन्द्रो वसुभिर्वासव इति समाख्या, तस्मान्मध्यस्थानाः ॥ वसव आदित्यरश्मयो विवासनात्तस्माद् द्युस्थानाः।
विष्णुः ॥ ११ ॥ इदंविष्णु (ऋ० सं० १ २,७,२) पार्थिवोऽग्निर्भूत्वा यत्किञ्चदस्ति तद्विक्रमते तदधिष्ठति, अन्तरिक्षे विद्युतात्मना, दिविसूर्यात्मना।

अंगुलि और रश्मि—(निरुक्त नैघण्टु काण्ड)। अङ्गुलयः। अण्व्यः (particles, atoms) क्षिपः (ejections or emanations) गभस्तयः (light rays or radiations) किरणाः, रश्मयः वसवः, मरीचिपाः, सप्तऋषयः सुपर्णा (cosmic radiations) इत्यादि।

स्फोट इति चार्थस्फुटीकरणाधीना संज्ञा (cf. Photons used for sense-data)
सूर्यस्येव वक्षथः' (ऋ० सं ५,३,२३, ३) ज्योतिः। शीघ्रगतयश्च···नानुगन्तुमन्येन शक्या। (light

travels faster than anything else) विष्णुः (ऋक० साम० यजु० अ० संहिताओं में) आदित्यः (sun) पार्थिवोऽग्निर्भूत्वा पृथिव्यां (heat, fire, lustre etc), ··· ··· अन्तरिक्षे विद्युत्मना (Indra or Vidyut or electricity) दिवि सूर्यात्मना (in the frimament as Solar radiations) अमीवा ॥ ४६ ॥ रोग भूत (पाप देशे उत्पन्नः) क्रिमिः (now called Ameba) (ऋ० सं० ८, ८, २०, २) रोग क्रिमि-गोचर और अगोचर। (अथर्व सं० काण्ड २, ३)

"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" ❀ ❀ "स दाधार" यतः पतिः, अतः स एव दाधार, स एव धारयति, अद्यत्वेऽपि। किम्? इति "पृथिवीम् उत द्याम्"। पृथिवीम् अन्तरिक्षम्, अपि च द्यां द्युलोकम्। अपि च "इमां" भूमिम्, अन्तस्समनुप्रविष्टो बहिश्च वर्षाद्युपकारेण।

"सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णा० (ऋ० सं० ८, ८, ७, १)"–इति। ... "यन्त्रैः पृथिवीम् अरम्णात्" यावत् किञ्चित् यन्त्र्यते तत् सर्वं वज्रेणैव, यन्त्रिता च इयं पृथिवी निश्चला, न चान्य इन्द्रात् बलवान् यन्त्रयितास्ति, तस्मात् इन्द्र एवेमां संयच्छन् स्थिरामकरोत्।

तत्को वृत्रः? ... अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते॥ तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति ॥ २ ॥ (निरुक्त)

गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् ॥ शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं। यत्र कुण्डलिनी ··· प्रतिष्ठिता। यस्मादुत्पद्यते वायुः ···। प्राणापान वशो जीवो ह्यधश्चोर्ध्वं च धावति। योगशिखोप०

'Energy is unavailable when it is in a state of equilibrium that is when it is uniformly distributed in space.' ... 'Einstein's relativity theory. ... teaches that there are no such things as absolute space and absolute time, ❀ In relativity theory this framework disappears; instead of a world of three dimensions ... we get a world of four ... The fourth dimension is Time. Space and Time do not exist as independent absolute realities, nature knows nothing of space and time separately; they are indissolubly connected as one reality which is designated "space-time." (page 779)

Mind stuff– Eddington holds that consciousness is fundamental; the physical world has no "actuality" apart from its linkage to consciousness; the "external world-stuff" is of nature continuous with the mind. Mind is the first and most direct thing in our experience, and, adds Eddington, all else is remote inference. ❀ The material universe itself is an interpretation of certain symbols presented to consciousness. ❀ ... the world of the physicist has

become ... more mystical. But the physicist no longer regards it merely as a machine ... Science is no longer disposed to identify reality with concreteness. (page 827 & 828)

Sir J. Jeans' view "I incline to the idealistic theory that consciousness is fundamental, and that the material universe is derivative from consciousness..." "Einstein also holds the view that mind and consciousness is fundamental". Sir A, Eddington: "The inmost ego, possessing...attribute (...that is concerned with truth), can never be part of the physical world...". (Page 520). (Ref. Outline of Modern Belief, Science & Modern Thought.

Sir J. Jean's generally accepted Theory — "A star is born a mass of gas.... As constriction continues, it grows hotter. ... ... & only the outer layers (atmosphere) remain gaseous. The star's density can not increase further and the interior is described as incompressible fluid. After a long period, ... star ends its career as a frozen body." (Page-516) (Ref. Part 9 of Outline of Modern Belief and Science.

"We...discussed... faithful pictures of the phenomena of nature. ... animistic, mechanical and mathematical."

"In the same way, our minds are conscious of a radical distinction between space and time which does not appear to extend to physical phenomena, these seem so similar in the continuum and so dissimilar when apprehended by our minds etc." (Ref. The New Backgrounds of Science by Sir J. Jeans).

"To deny ether, is ultimately to assume that empty space has no physical properties whatever...According to general theory of relativity, space is endowed with physical qualities; in this sense, therefore, ether exists. According to general theory of Relativity, space without ether is unthinkable; for in such space, there would be no propagation of light." (Ref. Side-lights on Relativity by Prof. Albert Einstein)

The wider knowledge of to-day shows that the main mass and the main energy of the universe do not exist in the form of atoms but of intangible radiation. We may say that the universe is mainly a

universe of radiation combined, in a far lesser degree with the atoms out of which radiation is continually being formed (Jeans). (Page 16)

Since all the matter in the universe is composed of atoms, which in turn are composed of electrons, all matter is electrical in its nature. (Page 27)

The theory of the electrical constitution of all matter has abolished matter: there is nothing now,but energy; we have only pointer readings to a new mystery universe, perhaps unknowable to the human mind. (Page 148)

Light appears to be both a stream of particles and a train of waves...the word "wavicle" has been invented.... (page 242)

"The universe seems to be built of particles that are wavicles and wavicles that are particles...electrons, protons and photons etc." A. S. Eve, D. Sc. Ref. Science To-day. (Page 233)

"In other words, is a living cell merely a group of ordinary atoms arranged in some non-ordinary way or is it something more ? is it

84

merely atoms, or is it atoms plus life." Ref. Mysterious Universe by Sir J. Jeans (in Modern Scientific Thought).

Prof. Leathes, writes in his essay named "The Living Machine", (Ref. Science To-day Page 116) Biochemistry ... does not claim that it can explain the chemistry of life. If any one is led by all he hears of the triumphs of biochemistry to imagine that the problem has been solved, it would be a case of the blind not knowing that they were being led by the blind."

"Enzymes are involved not only in digestion but also in a great many chemical processes that make up life. Ref. Hygeia (January, 1939) published by the American Medical Association.

"All living things contain ferments and cease to live, if these ferments cease to be able to work...." Ref. A Book of Popular Science (1931) Vol. 1 (page 195) Ed. by D. S. Kimball, LL. D.

"The ferments are unquestionably closely related to the life processes of cells." Ref. Hall's English translation of German E.

Abderhalden's Text Book of Physiological Chemistry (1908).

According to Swarshastra, Pran and Apan vayu stimulate inspiration and expiration; in modern Physiology, oxygen and carbonic acid, are now believed to be the cause of alternate expiration and inspiration. "Thus inhalation itself creates the condition for exhalation and this leads to inhalation again....This was not a mistaken opinion nor was simply ignorance of the alternation between oxygen and carbonic acid, but it was mortifying evidence of how utterly the whole mechanism of breathing was misunderstood, how totally unsuspected was its real part in the economy of the body." (Ref, Whither Medicine by Joseph Loebel, Dr. Med.) (Page 67)

When we embark on the sea of high mathematical physics... man must...shed his terrestrial envelope;...forget his three-dimensional world; think of possibilities right outside actual human experience;...non-material shadowy four-dimensional continuum as a never-never-land, a never-get-at-able place where the Great Opera-

tor works with entities a human being cannot see nor handle, nor as yet dimly understand. To do so...we...need to have other senses and more perfect eyes, a better brain and a different body.

It was Max Planck ... who ... maintained that energy is not emitted in a continuous fashion but only in tiny packets, or quanta. Ther is no radiation except by quanta. That represents the material natural reaction between ether and matter. (page 240)

As Eddington puts it ...that substance is one of the greatest of our illusions....

"After all that is there any one who still talks about the materialism of science ? Rather does the scientist join with the psalmist of thousands of years ago in reverently proclaiming the Heavens declare the glory of God and the Firmament sheweth his handiwork. The God of Science is the spirit of rational order and of orderly development, the integrating factor in the world of atoms and of ether and of idea and of duties and of intelligence." (Page 152)

Most people have heard of the Oriental race which puzzled over the foundations of the universe and decided that it must be supported on the back of a giant elephant. But the elephant ! They put it on the back of a monstrous tortoise, and there they let the matter end. If every animal in nature had been called upon, they would have been no nearer a foundation. Most ancient peoples indeed, made no effort to find a foundation.

"for it was just about this time that science, mainly under the guidance of Poincare Einstein and Heissenberg, came to recognise that ... ... before we could study objective nature, we must study the relation between nature and ourselves." (Sir J. Jeans New Background of Science)

"The study of cytology, is therefore a microscopical Science, and the physiology of the cell has also to be microscopical ... ... Ultimately, the parts of which a cell is composed are the molecules of the various chemical substances" (Science to day)

प्रकरण ?

नर देह के दो रूप—(व्यावहारिक और पारमार्थिक)

इदानीं नरदेहस्य शृणु रूपद्वयं खग ।
व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं पारमार्थिकम् । ४६ । (गरुड़पुराण)
षटचक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत् । (उपनिषत्)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते । १६ ।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः । १७ ।
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्यधिष्ठितम् । १७ ।
(श्रीमद्भागवद्गीता अ० १५ और १३)

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमाद युगपत्प्रवृत्तेश्च । पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ।१८।
तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य । कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च । १९ ।
(सांख्यकारिका)

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् । अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्ग भोगसाधनम् ।
पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः । कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति । ३४ ।
(पैङ्गलशारीर और पातञ्जलदर्शन-कैवल्यपाद)

चिद्वसानो भोगः । "जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमान" इति सांख्यदर्शन ।
चित्तम् अयस्कान्तमणिकल्पं सन्निधिमात्रोपकारि दृश्यत्वेन स्वं भवति पुरुषस्य स्वामिनः ।
तस्मात् चित्तवृत्तिबोधे पुरुषस्य अनादि सम्बन्धो हेतुः । (पातञ्जल दर्शन व्यासभाष्य)

अस्ति खल्वन्योऽपरो भूतात्मा योऽयं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः सदसद्योनिमापद्यत इत्यवाचीं वोर्ध्वां गतिं द्वन्द्वैरभिभूयमानः परिभ्रमतीत्यस्योपव्याख्यानं पञ्चतन्मात्राणि भूतशब्देनोच्यन्ते पञ्चमहाभूतानि भूतशब्देनोच्यन्तेऽथ तेषां यः समुदायः शरीरमित्युक्तमथ यो ह खलु वाव शरीरमित्युक्तं स भूतात्मेत्युक्तमथास्ति तस्यात्मा बिन्दुरिव पुष्कर इति स वा एषोऽभिभूतः प्राकृतैर्गुणैरित्यतोऽभिभूतत्वात्संमूढत्वं प्रयात्यसंमूढत्वादात्मस्थं प्रभुं भगवन्तं कारयितारं नापश्यद्गुणौघैस्तृप्यमानः कलुषीकृतश्चास्थिरश्चञ्चलो लोलुप्यमानः सस्पृहो व्यग्रश्चाभिमानत्वं प्रयात् इत्यहं सो ममेदमित्येवं मन्यमानो निबध्नात्यात्मनात्मानं जालेनेव खचरः कृतस्यानुफलैरभिभूयमानः परिभ्रमतीति ॥ २ ॥ (मैत्रायण्युपनिषत्)

सुकृति जन जन्माचरण निरूपण—

गरुड उवाच–धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले। अतस्तस्य समुत्पत्तिं जननी जठरे वद। १ ॥ यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन्सुकृती जनः। तथाऽहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणा-निधे। २। श्रीभगवानुवाच–साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य परंगोप्यं वदामि ते। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते। ३। वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम्? ब्रह्माण्डगुणसम्पन्नं योगिनां धारणास्पदम्। ४। षटचक्रचिन्तनं यस्मिन्यथा कुर्वन्ति योगिनः। ब्रह्मरन्ध्रे चिदानन्दरूपध्यानं तथा शृणु। ५। शुचीनां श्रीमतां गेहे जायन्ते सुकृती यथा? तथा विधानं नियमं तत्पित्रोः कथ-यामि ते। ६।

ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिन चतुष्टयम्। तावन्नालोकयेद्वक्त्रं पापं वपुषि सम्भवेत्। ७। स्नात्वा सचेलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुध्यति। सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने। ८। सप्ताहमध्ये या गर्भः स भवेन्मलिनाशयः। प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्वष्टाहमध्यतः। ९। युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। पूर्वं सप्तकमुत्सृज्य तस्माद्युग्मासु संविशेत। १०। षोडशर्तु-निशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः। या वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै। ११। गुणभाग्य-निधिः पुत्रस्तदा जायेत धार्मिकः। सा निशा प्राकृतै जीवैर्न लभ्येत कदाचन। १२। पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं मधुरभोजनम्। कटुक्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः। १३। तत्क्षेत्रमौषधी पात्रं बीजं चाप्यमृतायनम्। तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक फलमवाप्नुयात्। १४। ताम्बूल-पुष्प श्रीखण्डैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत्पुमान्। १५। निषेक

समये यादृश नरचित्त विकल्पना। तादृक्स्वभाव सम्भूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः। १६। चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम्। कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात्। १७। तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः। शुक्रशोणितसंयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते। १८। परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती। भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः। १९। जन्मप्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेपुच्चगतेषु च। तज्जन्मसमये विप्राः प्राप्नुवन्ति धनं बहु। २०। विद्याविनयसम्पन्नो वर्धते पितृवेश्मने। सतां सङ्गेन स भवेत् सर्वागम विशारदः। २१। दिव्याङ्गनादि भोक्ता स्यात्तारुण्ये दानवान्धनी। पूर्वकृततपस्तीर्थ महापुण्य फलोदयात्। २२। ततश्च यतते नित्यमात्मनाम विचारणे। अध्यारोपापवादाभ्यां कुरुते ब्रह्मचिन्तनम्। २३। अस्यासद्भाववोधाय ब्रह्मणोऽन्वय कारिणः। क्षित्याद्यनात्मवर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम्। २४। ··· ··· मनो बुद्धिरहङ्कार श्चित्तं चेति चतुष्टयम्। अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम्। ३१। ··· ज्ञान कर्मेन्द्रियाणां च देवताः परिकीर्तिताः। ३३। इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्नाख्या तृतीयका। ··· पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाड़िकाः। ३५। प्राणोऽपानः समानाख्य उदानो व्यान एव च नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तोधनञ्जयः। ३६। ··· ··· ··· एव सर्वे प्रवर्तन्ते स्व स्व कर्मणि वायवः।

"उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्यालोकं यथा जनाः। ४५। ··· तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटि चरोमाणि व्यवहारिके। ··· एतद्गुण समायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम्। ५२। भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः। आदित्याद्या ग्रहा सन्ति शरीरे पारमार्थिके। ५३। पारमार्थिके देहे हि षटचक्राणि भवन्ति च।

५३

ब्रह्माण्डे ये गुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यास्मिन्नेवसंस्थिताः ।५४। तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदान् । येषां भावनया जन्तुर्भवेद्वैराजरूपभाग ।५५। पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितले तथा। जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम् ।५६। तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम्। पातालं कटिसंस्थं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः।५७। भूर्लोकंनाभिमध्येतु भुवर्लोकंतदूर्ध्वके। स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा ।५८॥ जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ।५९॥ त्रिकोणे संस्थिता मेरुरधः कोणे च मन्दरः। दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः ।६०॥ निषधश्चोर्ध्वरेखायां दक्षायां गन्धमादनः। रमणो वाम रेखायां सप्तैतेकुलपर्वताः ।६१॥ अस्थि स्थानेभवेज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः। कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च॥६२॥ त्वचायां शाल्मली द्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये। नखस्थं पुष्करं विद्यात्सागरास्तदनन्तरम्॥६३॥ क्षारोदकोहि भवेन्मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः ।सुरोदधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः॥६४। रसोदधि रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः। स्वादूदको लम्बिकास्थाने जानीयाद्विनतासुत्। नादचक्रे स्थितः सूर्यो विन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये ज्ञः प्रकीर्तितः॥६६॥ विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितो नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः ।६७। वायु स्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम्। एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम्।६८ ।सदा प्रभातसमये वद्धपद्मासनः स्थितः। षटचक्र चिन्तनं कुर्याद्यथाक्रमजपाक्रमम्। ६९। अजपानाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी। अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः

प्रमुच्यते । ७० । शृणु तादृशं प्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम् यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति । ७१ ।

षटचक्र वर्णन—

मूलाधारः स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च । अनाहतं विशुद्ध्याख्यमाज्ञा षटचक्रमुच्यते ॥ ७२ । मूलाधारे लिङ्गदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे । भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्तयेत । ७३ ॥ आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं, स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषटपत्रकम् । रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डाद्यंफकारान्तकं पत्रैर्द्वादशभिरनाहतपुरं हैमं कठान्तावृतम् । ७४ । पत्रैः सस्वरषोड़शैः शशधरज्योतिर्विशुद्धाम्बुजं हंसे त्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमात्राम्बुजम् । तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं सत्यानन्दमयं सदा शिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् । ७५ । गणेशं च विधिं विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः । व्यापकं च परंब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत् ॥ ७६ । एक विंशतिसहस्राणि षटशतान्यधिकानि च । अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता बुधैः । ७७ । हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः । हंसो हंसेति मन्त्रेण जीवो जपति तत्त्वतः । ७८ ॥ षटशत गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे षट्सहस्रं च हरये षटसहस्रं हराय च ॥ ७९ ॥ जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा । चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥ ८० ॥ एतांश्चक्रगतान्ब्रह्म मयूखान्मुनयाऽमरान् । सत्सम्प्रदायवेत्तार-

५५

श्चिन्तयन्त्यरुणादयः ॥ ८१ ॥ शुकाद्योऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशन्ति च । अतः प्रवृत्तिं महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः ॥ ८२ ॥ कृत्वा तु मानसीं पूजां सर्व चक्रेष्वनन्यधीः । ततो गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत् ॥ ८३ ॥ अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपङ्कजे । हंसगं श्रीगुरुंध्यायेद्वराभय-कराम्बुजम् ॥ ८४ ॥ क्षालितं चिन्तयेद्देहं तत्पादामृतधारया । पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च । ८५ । ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः । षट्चक्रकृतसञ्चारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम् । ८६ । ततो ध्यायेत्सुषुम्नाख्यंधामरन्ध्राद्बहिर्गतम् । तथा तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् । ८७ । ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वयं ज्योतिः सनातनम् । सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्राह्म-संज्ञके । ८८ । एवं गुरूपदेशेन मनोनिश्चलतां नयेत । न तु स्वेन प्रयत्नेन तद्विना पतनं भवेत् । ८९ । अन्तर्यागं विधायैवं बहिर्यागं समाचरेत् । स्नान सन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिरार्चनम् । ९० । देहाभिमानिनामन्तर्मुखी वृत्तिर्नजायते । अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी । ९१ । तपो-योगादयो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च । समीचीनस्तु मद्भक्तिमार्गः संसरतामिह । ९२ । ब्रह्मादि-भिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः । त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । ९३ । यज्ञादयोऽपि-सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः । फलरूपा च मद्भक्तिस्तां लब्धा नावसीदति ॥ ९४ । एवमाचरणं तादृशं करोति सुकृती नरः । संयोगेन च मद्भक्त्या मोक्षं याति सनातनम । ९५ ।

(श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः)

देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् । गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् ।१६८।

शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते। यत्र कुण्डलिनीनाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता। १६९। यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते। यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्तते । १७०। यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् । १७१। स्वाधिष्ठानाह्वयं चक्रं लिङ्गमूले षडस्रकं । नाभिदेशे स्थितं चक्रं दशारं मणिपूरकम्। १७२। द्वादशारं महाचक्रं हृदये चाप्यनाहतम्। तदेतत्पूर्णगिर्याख्यं पीठं कमलसंभव। १७३। कण्ठकूपे विशुद्धाख्यं यच्चक्रं षोडशास्त्रकम्। पीठं जालन्धरं नाम तिष्ठत्यत्र सुरेश्वर । १७४। आज्ञा नाम भ्रुवोर्मध्ये द्विदलं चक्रमुत्तमम् उड्यानाख्यं महापीठमुपरिष्टात्प्रतिष्ठितम्। १७५। चतुरस्रं धारण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता। अर्धचन्द्राकृति जलं विष्णुस्तस्याधिदेवता। १७६। त्रिकोणमण्डलं वह्नी रुद्रस्तस्याधिदेवता। वायोर्बिम्बं तु षट्कोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता। १७७। आकाशमण्डलं वृत्तं देवतास्य सदाशिवः। नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसा मण्डलं विदुः। १७८। (योगशिखोपनिषत्)

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः। १। (योगदर्शन कैवल्यपाद) ❀ रसौषधिक्रियाजालमन्त्राभ्यासादिसाधनात्। सिध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः ॥ १५२ ॥ अनित्या अल्पवीर्यास्ताः सिद्धयः साधनोद्भवाः। साधनेन विनाप्येवं जायन्ते स्वत एव हि ॥१५३ ॥ स्वात्मयोगैकनिष्ठेषु स्वातन्त्र्यादीश्वरप्रियाः। प्रभूताः सिद्धयो यास्ताः कल्पनारहिताः स्मृताः ॥ १५४ ॥ सिद्धा नित्या महावीर्या इच्छारूपाः स्वयोगजाः। चिरकालात्प्रजायन्ते वासनारहितेषु च ॥ १५५ ॥

(योगशिखोपनिषत्)

आगे बताया गया है कि योग के पुरातन वक्ता भगवान हिरण्यगर्भ हैं। इन्हीं को सांख्य में पुरुषाख्या महत्, बुद्धि तत्त्वादि नामों से वर्णन किया गया है। बुद्धि या तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति के लिये शुद्ध नदी पुलिन आदि ऐसे पवित्र निर्धूम और निर्धूल (धूम्र और धूल रहित) स्थानों में योगाभ्यास का उपदेश किया गया है। जन्म के पूर्व नवम मासमें गर्भोपनिषत् के अनुसार, गर्भमें जीव पूर्वजाति का स्मरण करता और दुःख का अनुभव करता है। वह बार २ प्रतिज्ञा करता रहता है कि अब की बार योनि से मुक्त होने पर वह महेश्वर और नारायण की शरण में प्राप्त होगा। योनि से मुक्त होने पर वह सांख्य और योग का अभ्यास करेगा तदनन्तर सनातन ब्रह्म का ध्यान करेगा। किन्तु जन्म के पश्चात् जगत की बाहरी वायु के स्पर्शमात्र से वह सब कुछ फिर भूल जाता है।

श्री गरुड़ पुराण में बताया गया है कि सुकृतीजन को गर्भ में लाने के लिये, स्त्री और पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्यादि का पालन करना चाहिये। और ऋतुधर्म के पीछे स्नान के दिन से पहले सप्ताह को छोड़कर, कठिनाई से और भाग्यवश प्राप्त होने वाली चौदहवीं (१४वीं) रात्रि को गर्भाधान के लिये प्राप्त होना चाहिये। यदि प्राकृत जनों को न प्राप्त होने वाली चौदहवीं रात्रि को पुरुष के शुद्ध चित्त की अवस्था में वीर्य गर्भाशय में प्राप्त हो तो योगी और पुण्यात्मा जीव कुटुम्ब में जन्म लेते हैं। वे प्रायः धनवान, दानी तथा यशस्वी होते हैं। वे शरीरस्थ षटचक्र में वर्तमान ब्रह्म के चिन्तन के ध्यान में समर्थ होते हैं। ऐसे ही लोग भगवान के भक्ति के भी

अधिकारी होते हैं और कैवल्यधाम को भी प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर मर्त्यलोक के जन्ममरण के चक्कर से छुटकारा पा जाते हैं।

ऐसे सुकृती जनों (Virtuous souls) के विधिवत् अर्थात् गुरूपदेश के अनुसार, योगाभ्यास करने से योग सिद्धियों की प्राप्ति भी सुनने में आती है। योगी लोग दूसरों के मन की बात जान लेते हैं। सिद्ध योगी सिद्ध संकल्प वाले होते हैं। नज़र से गायब हो सके हैं। दूर और आड़ की वस्तु देख सके हैं। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र जीवनमुक्त योगियों को जल डुबो नहीं, सकता, आग जला नहीं सकती। वे पृथ्वी में उसी तरह सरलता से घुस सकते और उसके बाहर निकल सकते हैं जैसे जल में डुबकी लगाकर फिर बाहर निकल आते हैं। रूई की तरह हलके हो सकते हैं। बड़े पत्थर की तरह बहुत भारी हो जाते हैं। बड़ी सरलता से दीवाल को स्पर्श करते हुये बड़े ऊंचे मंदिरों के शिखर तक चढ़ कर फिर सरलता से नीचे उतर आते हैं। दूर की खबर (शब्द) तक बिना किसी यन्त्र की सहायता से सुन सके हैं। दिव्य चक्षु (clairvoyance) और दिव्य श्रोत्र (clairaudience) ऐसी सिद्धियां गप नहीं है।

इस लेख में योग के षटचक्र सम्बन्धी पारमार्थिक शरीर का सार दिया जाता है। इसके विस्तृत वर्णन अनेक उन स्थानों में मिलते हैं जिनके नाम आगे दिये जा चुके हैं। मन्त्र, लय, हठ और राज योग को क्रम से अन्तर्भूमिका कहाती हैं। जीव हकार शब्द के साथ सांस के साथ २ बाहर आता है और सकार के उच्चारण के साथ फिर भीतर लौट जाता है। सब जीव

"हंस हंस" इस मन्त्र को जपते रहते हैं। गुरु वाक्य से सुषुम्ना में जप विपरीत हो जाता है। 'सोऽहं सोऽहमिति' का उच्चारण मन्त्रयोग कहाता है। हकार में पुरुषरूप सूर्य या शिव और सकार में स्त्री रूप शक्ति या चन्द्रमा प्रतिष्ठित हैं। सूर्य और चन्द्रमा के ऐक्य को हठ योग कहते हैं। क्षेत्रज्ञ और परमात्मा का जब ऐक्य होता है, तब एकता के सिद्ध होने पर ब्रह्म और चित्त विलीन हो जाते हैं। लय योग के उदय होने पर पवन स्थिर होता है और लय से सौख्य या परमानन्द परं पदम् प्राप्त होता है। जन्तुओं के महाक्षेत्र योनि मध्यमें देवीतत्व से समावृत(घेरा हुआ) रज तत्व रहता है। रज और रेत के योग से ही राजयोग होता है। प्राण और अपान के समायोग को योगचतुष्टय कहते हैं।

योगीन्द्र सर्वकर्त्ता स्वतन्त्र और अनन्त रूपवान होता है। सिद्धियां कल्पित और अकल्पित दो प्रकार की कहाती हैं। अनित्य और अल्पवीर्य जो सिद्धियां होती हैं, वे साधनों द्वारा उत्पन्न होती हैं। साधन बिना स्वतः भी वे उत्पन्न हो जाती हैं। स्वात्मयोगनिष्ठों में स्वतन्त्र और ईश्वर प्रिया सिद्धियां महावीर्या, नित्या और इच्छा रूपा होती हैं। वे चिरकाल के पश्चात् वासना रहित योगाभ्यासियों में ही उत्पन्न होती हैं। वे बिना कार्य के सदा गुप्त रहती हैं। योग मार्ग में ऐसे सिद्धिजाल स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे स्वर्णकार ही सोने की परीक्षा कर सकता है, उसी तरह सिद्ध ही जीवन मुक्त सिद्ध को पहचान सकता है। इनसे सम्बन्ध रखने वाले कुछ शास्त्रीय वचन नीचे जिज्ञासुओं के लिये उद्धृत किये जाते हैं।

यहां प्रसंगवश चार प्रकार के प्रसिद्ध योग के भेदों के विषय में कुछ और बताना आवश्यक है। इनके साधनों के अभ्यास द्वारा अनेक प्रकार की अणिमादि सिद्धियां प्राप्त होती हैं। मन्त्र, लय, हठ और राज योग ये चार महायोग के भेद हैं। उक्त महायोगसे अव्यय परमात्मपद के प्राप्त होने पर जो योगसिद्धि के लक्षण बताये गये हैं हमेशा गुप्त रक्खे जाते हैं, अर्थात् योगियों द्वारा बिना कार्य के नहीं दिखाई जातीं। जिस तरह किसी यात्री को यात्रा काल में नाना तीर्थ और नाना रास्ते दिखाई पड़ते हैं। उसी तरह से योग मार्ग में भी योगियों को सिद्धि जाल दिखाई पड़ते हैं। सिद्ध योगी ही सिद्ध जीवनमुक्त योगियों को पहचान सकते हैं। यथा—

'रेचकं पूरकं मुक्त्वा वायुना स्थीयते स्थिरम्। नाना नादाः प्रवर्तन्ते संस्रवेच्चन्द्रमण्डलम् ॥ १२७ ॥ नश्यन्ति क्षुत्पिपासाद्याः सर्वदोषास्तनस्तदा। स्वरूपे सच्चिदानन्दे स्थितिमाप्नोति केवलम् ॥ १२८ ॥ कथितं तु तव प्रीत्या ह्येतदभ्यासलक्षणम्। मन्त्रो लयो हठो राजयोगोऽन्तर्भूमिकाः क्रमात् ॥ १२९ ॥ एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोऽभिधीयते। हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ १३० ॥ हंस हंसेति मन्त्रोऽयं सर्वैर्जीवैश्च जप्यते। गुरुवाक्यात्सुषुम्नायां विपरीतो भवेज्जपः ॥ १३१ ॥ सोऽहंसोऽहमिति प्रोक्तो मन्त्रयोगः स उच्यते। प्रतीतिर्मन्त्रयोगाच्च जायते पश्चिमे पथि ॥ १३२ ॥ हकारेण तु सूर्यः स्यात्सकारेणेन्दुरुच्यते। सूर्याचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते ॥ १३३ ॥ हठेन ग्रस्यते जाड्यं सर्वदोषसमुद्भवम्। क्षेत्रज्ञः परमात्मा च तयोरैक्यं यदा भवेत् ॥ १३४ ॥ तदैक्ये साधिते ब्रह्मंश्चित्तं याति विलीनताम्। पवनः स्थैर्यमायाति लययोगोदये

सात। १३५। लयात्संप्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्दं परं पदम्। योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपाबन्धूकसं-निभम्। १३६। रजो वसति जन्तूनां देवीतत्त्वं समावृत्तम्। रजसो रेतसो योगाद्राजयोग इति स्मृतः। १३७। अणिमादिपदं प्राप्य राजते राजयोगतः प्राणापानसमायोगो ज्ञेयं योगचतुष्टयम्। १३८। ... ... सर्वज्ञोऽसौ भवेत्कामरूपः पवनवेगवान्। १४८। क्रीडते त्रिषु लोकेषु जायन्ते सिद्धयोऽखिलाः। कर्पूरे लियमाने किं काठिन्यं तत्र विद्यते। १४९। अहंकारक्षये तद्वद्देहे कठिनता कुतः। सर्वकर्ता च योगीन्द्रः स्वतन्त्रोऽनन्तरूपवान्। १५०। जीवनमुक्तो महायोगी जायते नात्र संशयः। द्विविधाः सिद्धयो लोके कल्पिताऽकल्पितास्तथा। १५१। ... ... तास्तु गोप्या महा-योगात्परमात्मपदेऽव्यये। विना कार्यं सदा गुप्तं योगसिद्धस्य लक्षणम्। १५६। यथाकाशं समुद्दिश्य गच्छद्भिः पथिकैः पथि। नाना तीर्थानि दृश्यन्ते नानामार्गास्तु सिद्धयः। १५७। स्वयमेव प्रजायन्ते लाभालाभ विवर्जिते। योगमार्गे तथैवेदं सिद्धिजालं प्रवर्तते। १५८। परीक्षकैः स्वर्णकारैर्हेम संप्रो-क्ष्यते यथा। सिद्धिभिर्लक्षयेत्सिद्धं जीवन्मुक्तं तथैव च। १५९। अलौकिकगुणास्तस्य कदाचिद्दृश्यते ध्रुवम्। सिद्धिभिः परिहीनं तु नरं बद्धं तु लक्षयेत ॥ १६०। (योगशिखोपनिषत)

सांख्य तथा योगशास्त्र से योग सिद्धियों के थोड़े उदाहरण—

स्वाभाविक सांस के साथ बाहर निकलने वाले प्राण की गति १२ अंगुल होती है। योगा-भ्यास से एक २ अंगुल प्राणगति में न्यूनता से क्रमशः निष्कामता, आनन्द, काव्यशक्ति आदि

की उत्पत्ति बताई गई है। ऐसा स्वरज्ञानियों का मत या अनुभव है। योगाभ्यास से अणिमादि सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं। मेरे मित्र विद्यानिधि (बारोदा राज्य से प्राप्त उपाधि) पं० श्री वैद्यनाथ मिश्र मैथिल) जी के स्वयं और अनेक विद्वानों की उपस्थिति में दरभंगा की किसी सभा में एक योगी ने आकर स्वेच्छा से थोड़े उक्त ऐश्वर्य बल के प्रदर्शन किये थे। प्रश्न किये जाने पर कि इनको आपने क्यों दिखाया ? उत्तर में उसने कहा कि आज लोगों को इनमें विश्वास नहीं है, इस लिये इनको प्रमाणित करने के लिये ही ऐसा किया गया है।

एकांगुलेकृतेन्यूने प्राणेनिष्कामतामता। आनन्दस्तुद्वितीयेस्यात्कविशक्तिस्तृतीयके ।२२४। वाचासिद्धिश्चतुर्थेचदूरदृष्टिस्तुपंचमे। षष्ठेत्वाकाशगमनंचंडवेगश्चसप्तमे ।२२५। अष्टमेसिद्धयश्चैवनवमेनिधयोनव। दशमेदशमूर्तिश्चछायाचैकादशेभवेत् ।२२६। द्वादशेहंसचारश्चगंगामृतरसंपिबेत्। आनखाग्रंप्राणपूर्णेकस्यभक्ष्यंचभोजनम् ।२२७। एवंप्राणविधिःप्रोक्तोसर्वकार्यफलप्रदः। ज्ञायतेगुरुवाक्येननविद्याशास्त्रकोटिभिः ।२२८। (शिवस्वरोदय)

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ।४५। ॐ तत्र अणिमा भवति अणुः लघिमा लघुर्भवति, महिमा महान् भवति, प्राप्तिः अंगुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्, प्राकाम्यम् इच्छानभिघातो, भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके, वशित्वं भूतभौतिकेषु वशीभवति, अवश्यश्चाऽन्येषाम् ईशितृत्वं तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे, यत्र कामावसायित्वं सत्यसङ्कल्पता, यथा सङ्कल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानं, न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्य्यासं करोति; कस्मात्, अन्यस्य

यत्र कामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथा भूतेषु सङ्कल्पादिति, एतानि अष्टौ ऐश्वर्य्याणि। कायसम्पद् वक्ष्यमाणा। तद्धर्मानभिघातश्च पृथ्वी मूर्त्या न निरुणद्धि योगिनः शरीरादिक्रियां, शिलामप्यनुप्रविशतीति. नापः स्निग्धाः क्लेदयन्ति, नाग्निरुष्णो दहति, न वायुः प्रणामी वहति, अनावरणात्मकेऽपि आकाशे भवति आवृतकायः, सिद्धानामपि अदृश्यो भवति। ४५। पातञ्जलदर्शन)

ऐश्वर्यमिति, तदष्टविधम् तदुक्तम्, "अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः। प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता। गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति"। इति। मूर्तेः शरीरस्य, अणिमा० अणुत्वम्, महिमा योजनादिव्यापित्वम्, लघिमा तूलादिवल्लघुत्वम्. भूमिष्ठएवाङ्गुल्यग्रेण चन्द्रमसं स्पृशतीत्यादिरूपसामर्थ्यमिन्द्रियैः प्राप्तिरित्युच्यते, श्रुतदृष्टेष प्राकाम्य मिच्छानभिघातः० यथा भूमौ जलेष्विव निमज्जतीत्यादि ईशिता तु भूतभौतिकानां सर्वेषां संकल्पमात्रेण प्रेरणम, वशिता गुणभूताद्यनधीनता सत्यसंकल्पता यत्कामस्तदवस्यति तत् प्राप्नोतीत्यनेनोक्तम्।

(सांख्यकारिका)

षटचक्र निरूपण—

षटचक्र—षटचक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्। ३। स्वदेहे यो न जानाति तस्यः सिद्धिः कथम्। चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानां च षड्दलम्। ४। नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्। षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा। सहस्रदल संख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि।

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् । ६ । योनिस्थानं द्वयोर्मध्ये कामरूपं निगद्यते । कामाख्यं तु गुदस्थाने पङ्कजम् तु चतुर्दलम् । ७ । तन्मध्ये प्रोच्यते योनिः कामाख्या सिद्धवन्दिता । तस्य मध्ये महालिङ्गं पश्चिमाभिमुखं स्थितम् । ८ । नाभौ तु मणिवद्बिम्बं यो जानाति स योगवित् । तप्तचामीकराभासं तडिल्लेखेव विस्फुरत् । त्रिकोणं तत्पुरं वन्हेरधो मेढ्रात्प्रतिष्ठितम् । समाधौ परमं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखम् । १० । तस्मिन्दृष्टे महायोगे यातायातो न विद्यते । स्व शब्देन भवेत्प्राणः स्वाधिष्ठानं तदाश्रयः । स्वाधिष्ठानश्रयादस्मान्मेढ्रमेवाभिधीयते । तन्तुना मणिवत्प्रोतो योऽत्र कन्दः सुषुम्नया । १२ । तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् । द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपाप विवर्जिते । १३ । तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्वं न विन्दति । ऊर्ध्वं मेढ्रदधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्डवत् । १४ । तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः । १५ । प्रधानाः दशस्मृताः इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना तृतीयगा ॥ (योगचूड़ामणि उपनिषत्)

षटचक्र निरूपण--षट चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशेत्सुखमण्डलम् मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम् ॥९॥ अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम् आधारं गुदमित्युक्तम् स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम् ॥ १० ॥ मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम् ॥ विशुद्धिः कण्ठमूले च आज्ञाचक्रं च मस्तकम् ॥ ११ ॥

(योगकुण्डलिनी उपनिषत्)

नवचक्र विवेक—

आधारचक्रम्—आधारे ब्रह्मचक्रं त्रिरावृतंभगमण्डलाकारम् । तत्र मूलकन्दे शक्तिः पावका-

कारं ध्यायेत् । तत्रैव कामरूपपीठं सर्वकामप्रदं भवति इत्याधारचक्रम् । द्वितीयं स्वाधिष्ठान चक्रं षड्दलम् । तन्मध्ये पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसदृशं ध्यायेत् । तत्रैवोड्याणपीठं जगदाकर्षणसिद्धिदं भवति । नाभिचक्रं तृतीयं-पञ्चावर्तं सर्पकुटिलाकारम् । तन्मध्ये कुण्डलीं बालार्ककोटिप्रभां तडित्प्रभां (तनुमध्यां) ध्यायेत् । सामर्थ्यशक्तिः सर्वसिद्धिदा भवति मणिपूरचक्रं । हृदयचक्रं—अष्टदलमधोमुखम् । तन्मध्ये ज्योतिर्मयलिङ्गाकारं ध्यायेत् । सैव हंसकला सर्वप्रिया सर्वलोकवश्यकरी भवति । कण्ठचक्रं—चतुरंगुलम् । तत्र वामे इडा चन्द्रनाड़ी दक्षिणे पिङ्गला सूर्य नाड़ी, तन्मध्ये सुषुम्नां श्वेतवर्णां ध्यायेत् । य एवं वेदानाहतसिद्धिदाभवति तालुचक्रं—तत्रामृत धारा प्रवाहः । घण्टिका लिङ्गमूल चक्ररन्ध्रे राजदन्तावलम्बिनी विवरं द्वादशारम् । तत्र शून्यं ध्यायेत् चित्तलयो भवति । सप्तमं भ्रूचक्रम्—अङ्गुष्ठमात्रम् । तत्र ज्ञाननेत्रं दीपशिखाकारं ध्यायेत् । तद्देव कपालकन्द वाक्सिद्धिदं भवति । आज्ञाचक्रम् अष्टमं । ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाण चक्रम् । तत्र सूचिका गृहेतरं धूम्रशिखाकार ध्यायेत् । तत्र जालन्धर पीठं मोक्षप्रदं भवतीति परब्रह्मचक्रम् । आकाशचक्रम्—नवमं । तत्र षोड्शपद्मनूर्ध्वमुखं तन्मध्ये कर्णिका त्रिकूटाकारम् । तन्मध्ये ऊर्ध्व—शक्तिः । तां पश्यन्ध्यायेत् । तत्रैव पूर्णगिरिपीठं सर्वेच्छासिद्धि साधनं भवति ।

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः । सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः । १ । ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा । पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः । २ । सृष्टि—संहारकर्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ । नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च । ३ । त्रैलोक्ये यानि

भूतानि तानि सर्वाणि देहतः । मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते । जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ।४। ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः । मेरुशृंगे सुधारश्मिर्बहिरष्टकलायुतः ।५। वर्ततेऽहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः ॥ ६ ॥ ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं यथा च वै । इडामार्गेण पुष्टयर्थं याति मन्दाकिनीजलम् । पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम । ७ । एष पीयूषरश्मिर्हि वामपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ ८ ॥ अपरः शुद्धदुग्धाभो हठात्कर्षति मण्डलात । रन्ध्रमार्गेण सृष्ट्यर्थं मेरौ संयाति चन्द्रमाः । ९ । मेरुमूले स्थितः सूर्यः कलाद्वादशसंयुतः । दक्षिणे पथि रश्मिभिर्वहत्यूर्ध्वं प्रजापतिः । १० । पीयूषरश्मिनिर्यासं धातूंश्च ग्रसति ध्रुवम । समीरमण्डले सूर्यो भ्रमते सर्वविग्रहे । ११ । एषा सूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि । वहते लग्नयोगेन सृष्टि-संहारकारकः । १२ । (शिवसंहिता द्वितीयपटल)

आधारपद्ममेतद्धि योनिर्यस्यास्ति कन्दतः । परिस्फुरद्वादिसान्तचतुर्वर्णं चतुर्दलम् । ८८ । कुलाभिधं सुवर्णाभं स्वयम्भूलिङ्गसंगतम् । द्विरण्डो यत्र सिद्धोऽस्ति डाकिनी यत्र देवता । ८९ । तत्पद्ममध्यगा योनिस्तत्र कुण्डलिनी स्थिता । तस्या ऊर्ध्वे स्फुरत्तेजः कामबीजं भ्रमन्मतम् । ९० । यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः । तस्य स्याद्दार्दुरी सिद्धिर्भूमित्यागक्रमेण वै । ९१ । वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम् । आरोग्यञ्च पटुत्वञ्च सर्वज्ञत्वञ्च जायते । ९२ । भूतं भव्यं भविष्यञ्च वेत्ति सर्वं सकारणम् । अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद्ध्रुवम् । ९३ । वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् । मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः । ९४ । जरामरण-

दुःखौघान्नाशयति गुरोर्वचः । इदं ध्यानं सदा कार्यं पवनाभ्यासिना परम् । ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मुच्यते सर्वकिल्बिषात् । ६५ । मूलपद्मं यदा ध्यायेद्योगी स्वायम्भुलिङ्गकम् । तदा तत्क्षणमात्रेण पापौघं नाशयेद्ध्रुवम् । ६६ । ··· स्वाधिष्ठानचक्रं—द्वितीयन्तु सरोजञ्च लिंगमूले व्यवस्थितम् । बादिलान्तं च षड्वर्णं परिभास्वरषड्दलम् । १०३ । स्वाधिष्ठानाभिधं तत्तु पंकजं शोणरूपकम् । बाणाख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति देवी यत्रास्ति राकिणी । १०४ । यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविन्दकम् । तस्य कामाङ्गनाः सर्वा भजन्ते काममोहिताः । १०५ । विविधञ्चाश्रुतं शास्त्रं निःशङ्को वै वदेद्ध्रुवम् । सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः । १०६ ।। मरणं खाद्यते तेन स केनापि न खाद्यते । तस्य स्यात्परमा सिद्धिरणिमादिगुणप्रदा ।।१०७।। वायुः सञ्चरते देहे रसवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । आकाशपङ्कजगलत्पीयूषमपि वर्द्धते ।। १०८ ।। मणिपूरचक्रं—तृतीयं पङ्कजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञकम् ।। दशारं डादिफान्तवर्णं शोभितं हेमवर्णकम् ।। १०९ ।। रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमङ्गलदायकः । तत्रस्था लाकिनी नाम्नी देवी परमधार्मिका ।। ११० ।। तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके । तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरन्तरसुखावहा । १११ । ईप्सितञ्च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् । कालस्य वञ्चनञ्चापि परदेहप्रवेशनम् । ११२ । जाम्बूनदादिकरणं सिद्धानां दर्शनं भवेत् । औषधीदर्शनञ्चापि निधीनां दर्शनं भवेत । ११३ । हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत् । । ११४ । कादिठान्तवर्णसंस्थानं द्वादशारसमन्वितम् । अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् । ११५ । पद्मस्थं तत्परं तेजो बाणलिंगं प्रकीर्तितम् । यस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं लभेत् ।११६।

सिद्धः पिनाकी यत्रास्ते काकिनी यत्र देवता । एतस्मिन्सततं ध्यानं हृत्पाथोजे करोति यः । क्षुभ्यन्ते तस्य कान्ता वै कामार्ता दिव्ययोषितः । ११७ । ज्ञानञ्चाप्रतिमं तस्य त्रिकालविषयम्भवेत् । दूर-श्रुतिर्दूरदृष्टिः स्वेच्छया खगतां व्रजेत् । ११८ । सिद्धानां दर्शनञ्चापि योगिनीदर्शनं तथा ॥ भवेत्-खेचरसिद्धिश्च खेचराणां जयन्तथा । ११९ । यो ध्यायति परं नित्यं बाणलिंगं द्वितीयकम् । खेचरी भूचरी सिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः । १२० । एतद्ध्यानस्य महात्म्यं कथितुं नैव शक्यते । ब्रह्माद्याः सकला देवा गोपायन्ति परन्त्विदम् । १२१ । विशुद्धचक्रं—कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम-पञ्चमम् । १२२ । सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वरसंयुतम् ॥ छगलाण्डोऽस्ति सिद्धोत्र शाकिनी चाधि-देवता । १२३ । ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वरपण्डितः । किन्त्वस्य योगिनोऽन्यत्र विशुद्धा-ख्ये सरोरुहे । चतुर्वेदा विभासन्ते सरहस्या निधेरिव । १२४ । इह स्थाने स्थितो योगी यदा क्रोध-वशो भवेत् । तदा समस्तं त्रैलोक्यं कम्पते नात्र संशयः । १२५ । इह स्थाने मनो यस्य दैवाद्याति लयं यदा । तदा बाह्यं परित्यज्य स्वान्तरे रमते ध्रुवम् । १२६ । तस्य न क्षतिमायाति स्वशरीरस्य शक्तितः । संवत्सरसहस्रेऽपि वज्रातिकठिनस्य वै । १२७ । यदा त्यजति तद्ध्यानं योगींद्रोऽवनि-मण्डले । तदा वर्षसहस्राणि मन्यते तत्क्षणं कृती । १२८ । आज्ञाचक्रं—आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम् शुक्लाभं तन्महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी । १२९ । शरच्चंद्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृंभितम् पुमान् परमहंसोऽयं यज्ज्ञात्वा नावसीदति । १३० । तत्र देवः परन्तेजः सर्वतन्त्रेषु मन्त्रिणः । चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्र संशयः । १३१ । तुरीयं त्रितयं लिंगं तदाहं मुक्तिदा-

यकः। ध्यानमात्रेण योगिन्द्रो मत्समो भवति ध्रुवम्। १३२। इडा हि पिंगला ख्याता वरणासीति होच्यते। वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषितः!। १३३। एतत्क्षेत्रस्य महात्म्यमृषिभिस्तत्त्व-दर्शिभिः। शास्त्रेषु बहुधा प्रोक्तं परं तत्त्वं सुभाषितम्। १३४। सुषुम्णा मेरुणा याता ब्रह्मरन्ध्रं यताऽस्ति वै ततश्चैषा परावृत्य तदाज्ञापद्मदक्षिणे। १३५। वामनासापुटं याति गंगेति परिगीयते॥ १३६। ब्रह्मरन्ध्रे हि यत्पद्मं सहस्रारं व्यवस्थितम्। तत्र कन्दे हि या योनिस्तस्यां चन्द्रो व्यव-स्थितः। १३७। त्रिकोणाकारतस्तस्याः सुधा क्षरति सन्ततम्। इडायाममृतं तत्र समं स्रवति चन्द्रमाः। १३८। अमृतं वहति द्वारा धारारूपं निरन्तरम् वामनासापुटं याति गंगेत्युक्ता हि योगिभिः। १३९। आज्ञा पङ्कजदक्षांसाद्वामनासापुटंगता उदग्वहेति तत्रेडा गंगेति समुदाहृता।१४०। ततो द्वयोर्हि मध्ये तु वाराणसीति चिन्तयेत्। तदाकारा पिंगलापि तदाज्ञाकमलोत्तरे दक्षनासापुटे याति प्रोक्तास्माभिरसीति वै॥ १४१॥ (शिवसंहिता ❀ पंचमपटल)

योगज्ञानार्थं क्षुद्रब्रह्माण्डत्वेन शरीरमुक्तम्। निर्वाणतन्त्रे दशमपटले यथा। ··· एवं बहु-विधं देवि! ··· वृहद्ब्रह्माण्डे ये सर्वे तेऽपि यस्य शरीरिणः। पृथिव्यां तेऽपि वर्त्तन्ते जन्तोराकार-विग्रहाः। ··· दृष्टिमात्रेण भेदोऽस्ति स्थूलसूक्ष्मादि भेदतः ··· आधारचक्रं तत् पद्मं धरामध्ये चतुर्दलम्। पद्ममध्ये वीजकोशे क्षितिचक्रं मनोहरम्। वलयाकाररूपेण समुद्राः सप्त संस्थिताः। जम्बूद्वीपं मध्यदेशे चतुष्कोणं मनोहरम्। त्रिकोणं मदनागारं कन्दर्पश्चाधिदेवता। इन्द्ररूपं हि लं वीजं गजेन्द्रवाहनं शिवे! त्रिकोणे मदनागारे लिङ्गरूपी महेश्वरः। मायाशक्तिर्महेशानि! भुजगा-

कारूपिणी । तथैव वेष्टितं लिङ्गं सार्द्धं त्रिवलयाकृति । लिङ्गच्छिद्रं स्ववक्त्रेण समाच्छाद्य सदा स्थितम् । इन्द्रबीजं वरारोहे ! लिङ्गस्य वामदेशके । सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम् । तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिः । वामभागे च सावित्री वेदमाता सुरेश्वरी । तस्याः प्रसादमासाद्य सृष्टिं वितनुते सदा । ··· इति मूलाधारकथनम् ।

पञ्चमपटले ❀ शिव उवाच—एतत् पद्मस्योर्द्धदेशे भीमाख्यं पङ्कजं शुभम् । पत्रषट्कं तथा वृत्तं चतुर्द्वारविभूषितम् । पद्ममध्ये वीजकोसे भुवोलोकं मनोहरम् । सिन्दूरसदृशं रक्तवर्णेन भूषितं तदा । तस्योर्द्धे निवसेद्विष्णुः श्रीवाण्यौ वामदक्षिणे ब्रह्मणा सृज्यते लोकः पाल्यते चक्रपाणिना । वैकुण्ठं नाम तत् स्वर्गं नानादेवालयं हि तत् वैकुण्ठस्य दक्षभागे गोलोकं सर्वमोहनम् । तत्रैव राधिका देवी द्विभुजो मुरलीधरः । नारदाद्यैः सुरगणैः शोभितं वेदपारगैः । ··· इन्द्राद्या देवताः सर्वा यथा सर्वं प्रपश्यति । तथैव भूमिगाः सर्वे तिष्ठन्ति स्तुतिहेतवे । महातत्त्वमयं लोकं वेदबाहुविराजितम् । ···मध्यदेशे गोलोकाख्यं श्रीविष्णोर्लोभमन्दिरम् । श्री विष्णोः सत्त्वरूपस्य यत् स्थलं चित्तमोहनम् ··तत्रैव सततं भाति द्विभुजो मुरलीधरः । तदा सत्त्वमयो विष्णुर्भुवनं पाति निश्चितम्·· बीजकोषस्य बाह्ये तु वेष्टितं तोयमण्डलम् ॥ प्रमाणं सुन्दरं तोयं यथा क्षीरोदसागरम् । ·· इन्द्रादिदेवताः सर्वाः स्तूयमाना निरन्तरम् ॥·· विष्णुगानं प्रकुर्वन्ति स्तुतिभक्तिपरायणाः । वेदगान प्रकुर्वन्ति चतुर्वक्त्रेण वेधसा । मालवाद्याश्च षड्रागाः षट्त्रिंशद्रागिणी तथा । ··· अत्रैव सन्ति ते रागाः सहस्राणि च षोडश । मुरारेर्मुरलीगानात् सर्वस्तालः प्रजायते । तेन तालेन रागेण सदा गायन्ति वेधसा

७१

तद्वाक्यं त्रिभागं हि कुर्वन्ति मुनयो जनाः वसन्ताद्याश्च ऋतवस्तिष्ठन्ति तत्र सन्ततम् । नानाऋतु-प्रसूनैश्च भूषितं मुरलीधरम् तत्रैव राधिका देवी नानासुखविलासिनी । ··· आदौ राधां ततः कृष्णं जपन्ति ये च मानवाः । सद्गतिं चैव तेषां हि दास्यामि नात्र संशयः ··· इति स्वाधिष्ठानकथनम् ।

षष्ठपटले—एतत्पद्मस्योर्द्ध्वदेशे महापद्मं सदुर्लभम् । दशपत्रं नीलवर्णं सहजं घोररूपकम् । डादिफान्तैः सचन्द्रैश्च पङ्कजञ्चातिशोभनम् । तन्मध्ये वीज कोषे निवसति सततं वह्निवीजं सुसिद्धम् वाह्ये तत् त्रैपुराख्यं नवतपनतिभं स्वस्तिकं तत्रिभागे स्वर्लोकाख्यमिदं देवि ! सर्वदेवप्रपूजितम् । साकारं वह्निवीजञ्च सदैव मेषवाहनम् रुद्रालयं हि तत्रैव महामोहस्य नाशनम् । भद्रकाली महाविद्या वामभागे सुशोभिता । भद्रकाली महाविद्या सदा संहारकारिणी ··· यद्रूपं कथितं पूर्वं गोलोकं सर्वमोहनम् । तस्माद्वै सर्वतोभावे रुद्रलोकं चतुर्गुणम् ··· इति मणिपूरकथनम् ।

सप्तमपटले—एतत्पद्मस्योर्द्ध्वदेशे विमलं पद्ममुत्तमम् । शोभितं द्वादशैः पत्रैः शोणबन्धूक-सन्निभम् । वाञ्छन्ति विकृतफलदं सिद्धिसिन्दूरसोदरम् पद्ममध्ये । वीजकोषे षट्कोणमण्डलं शुभम् मण्डलस्य मध्यदेशे वायुवीजं मनोहरम् । सवीजं वायुवीजेन वेदबाहुविराजितम् । लोकत्रयस्य ईशानमीश्वरं सर्वपूजितम् । या विद्या ··· ईश्वरस्य वामभागे सा देवी परितिष्ठति । ··· अतश्च मानवाः सर्वे ज्योतिषं परिपश्यति । ··· भूमिगाः परिपश्यन्ति चक्राकारं हि तैजसम् । स्वर्लोक-वासिनः सर्वे परिपश्यन्ति साकृतिम् । ··· भूर्लोके निवसेद्ब्रह्मा भुवर्लोके जनार्दनः स्वर्लोके निवसे-च्छम्भुः सदा संहारकारकः । ब्रह्मादीनाञ्च ईशानः सर्वकर्त्ता च ईश्वरः । सर्वस्वामिस्वरूपश्च सर्वकर्त्ता

च ईश्वरः ...तस्माच्छतगुणं देवि ! महर्लोकं सु सुन्दरम् । ... तस्मादेव शतैकांशं गोलोके मुरली-धरम् । तदाज्ञां प्राप्य सहसा सृज्यते पद्मयोनिना । तदाज्ञया पाति लोकान् द्विभुजो मुरलीधरः । एवं हि रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत् । ... ईश्वरः सर्वकर्त्ता च निर्गुणश्चाचलः शिवः । भुवनेशीं समासाद्य सर्वस्वामी च ईश्वरः ... स एव मोक्षदायकः । विश्वमाता च सा देवी विश्वपालन-कारिणी ... भुवनेशीं विना ईशः किञ्चित् कर्त्तुं न शक्यते इत्यनाहतकथनम् ।

अष्टमपटले—शङ्कर उवाच, अस्योर्द्धे निर्मलं पद्मं सर्वमोहनकारणम् । षोडशैः पत्रकैर्युक्तं मोहान्धाकारनाशनम् । धूम्रमध्ये यथा वह्निस्तथा ज्योतिर्मयं प्रिये ! पद्ममध्ये वराटे च जनोलोकं सुसुन्दरम् । महामोहान्धशमनं तद्वाह्ये चन्द्रमण्डलम् ...गोलोकस्य लक्षगुणमिदं स्थानं सुदुर्लभम् । ... वीजकोषे मणिद्वीपे षट्कोणं यन्त्रमुत्तमम् । यन्त्रमध्ये च वृषभं महासिंहार्द्धदेहकम् । तस्या-परि महागौरी दक्षभागे सदाशिवः । त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनः । ... व्याघ्रचर्मधरो देवोऽणिमादिभिर्विभूषितः । लोकानामिष्टदाता ...भुक्तिजनको ...मुक्तिदायकः । ...या गौरी लोकमाता च ब्रह्मार्द्धाङ्गस्वरूपिणी । त्रिगुणा सा महादेवी गुणैकेन पिनाकधृक् । तस्याः सङ्गं समासाद्य सर्व-कर्त्ता सदाशिवः । इति विशुद्धस्थानकथनम् ।

नवमपटले—शङ्कर उवाच, एतत्पद्मस्योर्द्धदेशे ज्ञानपद्मं सुदुर्लभम् । पद्मद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मंडलम् । पद्ममध्ये वीजकोषे स्मरेच्चिन्तामणेः पुरीम् । तन्मध्ये नवकोणञ्च यन्त्रं परमदुर्लभम् । शम्भुवीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम् हंसः परं ब्रह्म- रूपः साकारः

शिवरूपकः । तारचक्रं वरारोहे ! निर्गमागमपक्षवान् । शिवशक्तिपदद्वन्द्वं विन्दुत्रयविलोचनम् विहारश्चास्य हंसस्य हेमपङ्कजपूजिते । एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोड़े परः शिवः । वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी । तस्याः प्रसादमासाद्य सर्वकर्त्ता महेश्वरः । तपोलोकमिदं भद्रे ! ··· यत्र ब्रह्मादयो देवा ध्यानं कुर्वन्ति सर्वदा । मनसापि न लभ्येत योगेन तपसा न च । ··· सालोक्यं हि महर्लोके सारूप्यं जनलोकके । सायुज्यं च तपोलोके निर्वाणं हि तदूर्द्ध्वके । ततो ब्रह्मादयो देवास्तपोलोकार्थिनः सदा । इति ते कथितं कान्ते ! क्रमपट्कस्य लक्षणम् । यज्ज्ञानादमरत्वञ्च जीवनमुक्तश्च साधकः । यज्ज्ञात्वा जननीगर्भं न विशेत्तु कदाचन । इति ज्ञानस्थानकथनम् ।

दशमपटले—शङ्कर उवाच, ज्ञानपद्मस्योर्द्ध्वदेशे सहस्रदलपङ्कजम् । अधोवक्त्रं महापद्मं सुमेरोर्मध्यसंस्थितम् । शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं हरितमेव च । विचित्र चित्ररूपेण नानावर्णेन शोभितम् । शुक्लं क्षणात क्षणाद्रक्तं क्षणात् पीतं सुशोभितम् । यस्मिन् क्षणे शुक्लवर्णं हरितं वर्णमुत्तमम् ।··· धत्ते कस्मिन् क्षणे क्षणे । एवं नानाविधं देवि ! तत् पद्मं शोभितं सदा । यथैव धाम गोलोकं प्रतिपत्रे तथैव हि । गोलोकाधिपतिस्तत्र भक्तिभावपरायणः । कैलासाधिपतिर्देवि ! ध्यानयोगं सदाभ्यसेत् । एवं ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्यास्त्रिदिवेश्वराः । स्तुतिभक्तिपराः सर्वे दीनभावे सदा स्थिताः । लक्षं लक्षं महेशानि ! तत्रैव मुरलीधरः । शतलक्षं तत्र रुद्रा ब्रह्मा लक्षशतं प्रिये ! । प्रत्यहं परमेशानि ! ब्रह्माण्डा बहवोऽभवन् । ··· शिवं बहुविधाकारं तत्रैव स्थापयेत्ततः । ··· नानाशक्तिं प्रविन्यसेत् ।

प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु ब्रह्मादिदेवतात्रयम् । नानाशक्तियुतं कृत्वा ब्रह्माण्डस्थापनञ्चरेत । ब्रह्मपद्म पृथिव्यान्तु वर्त्तन्ते मानुषादयः । ··· एवं चक्रे सर्वदेहे भुवनानि चतुर्द्दश । ··· तन्मध्ये सत्यलोकञ्च महारुद्रस्य कारणम् । ··· महारुद्रः स एवात्मा महाविष्णुः स एव हि । महाब्रह्मा स एवात्मा नाममात्रविभेदकः । एकमूर्त्तिस्त्रिनामानि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । नानाभावे मनो यस्य तस्य मोक्षो न विद्यते । ··· तत्र ब्रह्मा तत्र विष्णुस्तत्र रुद्रः प्रविन्यसेत् । एवं ब्रह्माण्डनिर्माणं कृत्वा विष्णुः सनातनः । स जीवमूर्त्तिं निर्माय तथा जन्तोश्च विग्रहम् । एवं ब्रह्माण्डं विविधं नित्यं सृजति निर्गुणम् । निर्गुणे विष्णुरूपश्च सिद्धिकारणमेव हि । केचिद्वदन्ति स ब्रह्मा कैश्चिद्विष्णुः प्रकथ्यते । केचिद्रुद्रो महापूर्व एकदेवो निरञ्जनः । आद्याशक्तियुतो देवप्रणवाकाररूपकः । इन्द्रजालस्य दीपाभं चन्द्रसूर्य्याग्निरूपकम् ··· सत्यलोके वीजकोषे चिन्तामणिगृहे शुभे । ध्यायेन्निरञ्जनं देवि ! रत्नसिंहासनोपरि । तस्यान्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरायणः । ··· सुरक्तां चारुवदनां स्वप्रकाशस्वरूपिणीम् । एवं कान्तायुतं देवं स्वमूर्ध्निस्थं विचिन्तयेत् । यथा दर्पणमध्ये तु परिपश्यन्ति पर्वतम् । सहस्रारे महापद्मे तथा देवं विचिन्तयेत् ।··· आद्याशक्तिर्महाकाली देवनिर्वाणकारिणी । जायन्ते च क्षितौ वृक्षो यथा पृथिव्यां विलीयते । तोयात्तु वुद्बुदं जातं यथा तोये विलीयते । जलदे तड़िदुत्पन्ना लीयते च यथा घने । तथा ब्रह्मादयो देवाः कालिकाया भवन्ति । तथा प्रलयकालेतु पुनस्तस्यांप्रलीयते । ··· अपरा सा महाकाली नद्यादीनां समुद्रवत् । गोष्पदे च तथा तोयं ब्रह्माद्या देवतास्तथा । ··· अतो निर्वाणदा काली पुमान् स्वर्गः प्रदायकः । दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः ।

··· हस्तपादादिरहिता सोमसूर्याग्निरूपिणी। तस्याः स्थानं हि कथितं सत्यलोकं वरानने ! यत् स्थानं सर्वदेवस्य प्रार्थनीयं सदानघे !। ··· सहस्रं गोलकं धाम ततो वक्तुं न शक्यते। ···देवकन्या-सहस्राणि परिचर्य्यापराणि च। तन्मध्ये वेदिका देवि ! पञ्चाशदक्षरात्मिका। तस्योपरि महेशानि ! रत्नसिंहासनं शिवे ! महाकाली महारुद्रश्चरणाकाकाररूपकः। इन्द्रजालस्य दीपाभं महाज्योतिः सनातनम्।··· मूर्ध्नि पद्मं सहस्रारं रक्तवर्णमधोमुखम् तस्य मध्यस्थितं ध्यायेद् गुरुं शान्तं सशक्तिकम्। मूलाधारे महाशक्तिं कुण्डलीरूपधारिणीम्। अधोवक्त्रे क्रमेणैव सर्वपद्मेषु भावना। ··· आधारे च स्थितस्तत्र अधोभागे कथं भवेत्। ··· तानि पद्मानि देवेशि ! सुषुम्नान्तःस्थितानि च। परं ब्रह्मस्वरूपाणि शब्दब्रह्ममयानि च। तत् सर्वं पङ्कजं देवि ! सर्वतोमुखमेव च प्रवृत्तिश्च निवृत्तश्च द्वौ भावौ जीवसंस्थितौ। प्रवृत्तिमार्गः संसारी निवृत्तिः परमात्मनि। प्रवृत्तिभावचिन्ताया मध्ये वक्त्राणि चिन्तयेत्। निवृत्तयोगमार्गेण सदैवोर्द्धमुखानि च। (निर्वाणतन्त्र)

श्रीतत्त्वचिन्तामणौ तु विशेष उक्तो यथा। मेरोर्वाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे सन्ने मध्ये नाड़ी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्य्याग्निरूपा। धुस्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः कन्दमध्याच्चिरस्था वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमे स्याज्ज्वलन्ती। तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान्मेरुमध्यान्तराले। भित्त्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्धबोधप्रबोधा तन्मध्ये ब्रह्मनाड़ी हरमुखकुहरादादिदेवान्तरास्था। विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखलसच्छुद्धभा-

वाग्भाता। ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसितसुधासाररम्यप्रदेशम्। ग्रन्थिस्थानं तदेतद्वदनमिति सुषुम्नाख्यनाड्या लपन्ति। अथाधारपद्मं सुषुम्नास्यलग्नं ध्वजाधोगुदोर्द्धं चतुःशोणपत्रम्। अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभरम्यैर्वकारादिशान्तैर्युतं वेदवर्णैः। अमुष्मिन धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासिशूलाष्टकैरावृतं तत्। लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्ग तदम्भःसमास्ते धरायाः स्वबीजम्। चतुर्बाहुभूषं गजेन्द्रादिरूढं तदङ्के नवीनार्कतुल्यप्रकाशम्। शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदबाहुर्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागवेदः। वसेदत्र देवी च डाकिन्यभिख्या लसद्वेदबाहूज्ज्वला रक्तनेत्रा। समानोदितानेकसूर्यप्रकाशा प्रकाशं वहन्ती सदा शुद्धबुद्धेः। वज्राख्या वक्त्र देशाद्विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं कोणं तत् त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत् कोमलं कामरूपम्। कन्दर्पो नाम वायुर्विलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात् जीवेशी बन्धुजीवप्रकरमपि हसन् कोटिसूर्य्यप्रकाशः। तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुतकमलकरणा कोमलः पश्चिमास्यो ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिशलयाकाररूपः स्वयम्भूः। उद्यत्पूर्णेन्दुविश्वप्रकरकरचयस्निग्धसन्तानहासी काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूपप्रकाशी। तस्योर्द्धे विषतन्तुशोकविलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम्। शङ्खावर्त्तनिभा नवीनचपला मालाविलासास्पदा सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः। कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं वाचं कोमलवाक्यबन्धरचनाभेदा विभेदक्रमैः। श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्य्यते सा मूलाम्बुज गह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः। तन्मध्ये परमा कलातिकुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा नित्यानन्द-

परस्परातिचपला मालालसद्दीधितिः । ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया । ध्यात्वैतन्मूलपद्मान्तरपर्थविलसत्कोटिसूर्य्यप्रकाशम् । वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी । आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि स महानन्दचित्तात्मरात्मा वाक्यैर्वाक्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः । सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्ममन्यत सौषुम्नमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे । अङ्गच्छदैः परिवृतं तड़िदाभवर्णैर्वाद्यैः सविन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः । तस्यान्तरे प्रविलसद्विशदप्रकाशमम्भोजमण्डलमथो वरुणस्य तस्य । अर्द्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दुशुभ्रं वङ्कारबीजममलं मकराधिरूढ़ः । तस्याङ्करेशशयितो हरिरेव पायान्नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधानः । पीताम्बरः प्रथमयौवनगर्भधारी श्रीवत्सकौस्तुभधरो धृतवेद बाहुः । अत्रैव भाति सततं खलु राकिणी सा नीलाम्बुजोदरसहोदरकान्तिशोभा । नानायुधोद्यतलसत्सतताङ्गलक्ष्मीर्दिव्याम्बराभरणभूषितमत्तचित्ता । (तत्त्वचिन्तामणि)

सहस्रदल पद्म वर्णन—

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशप्रकाशं विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णपूर्णेन्दुशुभ्रम् । अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकलाकान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं ललाटाद्यैर्वर्णैः प्रविलसिततनु केवलानन्दरूपम् ॥ १ ॥ समास्ते तत्रान्तः शशपरिरहितः शुद्धसापूर्णचन्द्रः स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासः । त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं तदन्तः शून्यन्तत् सकलसुरगुरुं चिन्तयेच्चातिगुह्यम् ॥ २ ॥ सुगोप्यं तद्यत्नादतिशयपरमामोदसन्तानराशेः परं कन्दं

सूक्ष्मं शशिसकल कलाशुद्धरूपप्रकाशम् । इहस्थाने देवः परमशिव समाख्यानसिद्धप्रसिद्धिः स्वरूपी सर्व्वात्मा रसविसर मितोऽज्ञानमोहान्धहंसः ॥ ३ ॥ सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां यतेरात्मज्ञानं दिशतिभगवान्निर्म्मलमतेः । समास्ते सर्व्वेशः सकलसुखसन्तानलहरीपरीवाहो हंसः परम इति नाम्ना परिचितः ॥ ४ ॥ शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा लपन्तीति प्रायो हरि हरपदं केचिदपरे । पदं देव्या देवीचरणयुगलानन्दरसिका मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम् इहस्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो नभूयात् संसारे क्वचिदपि च वद्धस्त्रिभुवने । समग्राशक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥ ६ ॥ अत्रास्ते शिशुसूर्य्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोड़शी शुद्धाः नीरजशूक्ष्मतन्तुशतधाभागैकरूपा परा । विद्युद्दाम समानकोमलतनु नित्योदिताधोमुखी पूर्णानन्दपरम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा ॥ ७ ॥ निर्व्वाणाख्यकला परात्परतरा सास्ते तदन्तर्गता केशाग्रस्य सहस्रधाविभजितस्यैकांशरूपा सती । भूतानामधि दैवतं भगवती नित्यप्रवोधोदया चन्द्रार्द्धाङ्गसमान भङ्गुरवती सर्व्वार्कतुल्यप्रभा ॥ ८ ॥ एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्व्वनिर्व्वाणशक्तिः कोट्यादित्य प्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा केशाग्र स्यातिगुह्या निरवधि विलसत्प्रेमधाराधरा सा सर्व्वेषां जीवभूता मुनिमनसि मुदा तत्ववोधं वहन्ती ॥ ६ ॥ तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगि गम्यं नित्यानन्दाभिधानं परमकुलपदं शुद्धवोधप्रकाशम् । केचिद्ब्रह्माभिधानं परमतिसुधियो वैष्णवास्तल्लपन्ति केचिद्धंसाख्य मेतत् किमपि सुकृतिनो मोक्षवर्त्मप्रकाशम् ॥ १० ॥ (स्वामीहंसस्वरूप प्रकाशित षट्चक्र निरूपण)

हृदय में अष्टदल पद्म और अष्टधावृत्तियां—

एवं कृत्वा हृदये अष्टदले हंसात्मानं ध्यायेत् । अग्नीषोमौ पक्षावोंकारः शिरो बिन्दुस्तु नेत्रं मुखं रुद्रो रुद्राणी चरणौ बाहू कालश्चाग्निश्चोभे पार्श्वे भवतः। पश्यत्यनागारश्च शिष्टोभयपार्श्वे भवतः। एषोऽसौ परमहंसो भानुकोटिप्रतीकाशः। येनेदं व्याप्तम्। तस्याष्टधा वृत्तिर्भवति। पूर्वदले पुण्ये मतिः आग्नेये निद्रालस्यादयो भवन्ति याम्ये क्रूरे मतिः नैरृते पापे मनीषा वारुण्यां क्रीडा वायव्ये गमनादौ बुद्धिः सौम्ये रतिप्रीतिः ईशाने द्रव्यादानं मध्ये वैराग्यं केसरे जाग्रदवस्था कर्णिकायां स्वप्नं लिङ्गे सुषुप्तिः पद्मत्यागे तुरीयं यदा हंसो नादे लीनो भवति तदा तुर्यातीतमुन्मननमजपोपसंहारमित्यभिधीयते। (हंसोपनिषत्)

हृदिस्थाने अष्टदलपद्मं वर्तते तन्मध्ये रेखावलयं कृत्वा जीवात्मरूपं ज्योतीरूपमणुमात्रं वर्तते तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितं भवति सर्वं जानाति सर्वं करोति सर्वमेतच्चरितमहं कर्ताऽहं भोक्ता सुखी दुःखी काणः खञ्जो बधिरो मूकः कृशः स्थूलोऽनेन प्रकारेण स्वतन्त्रवादेन वर्तते। पूर्वदले विश्रमते पूर्वं दलं श्वेतवर्णं तदा भक्तिपुरःसरं धर्मे मतिर्भवति। यदाऽग्नेयदले विश्रमते तदाऽग्नेयदलं रक्तवर्णं तदा निद्रालस्यमतिर्भवति। यदा दक्षिणदले विश्रमते तद्दक्षिणदलं कृष्णवर्णं तदा द्वेषकोपमतिर्भवति। यदा नैरृतदले विश्रमते तन्नैरृतदलं नीलवर्णं तदा पापकर्महिंसामतिर्भवति। यदा पश्चिमदले विश्रमते तत्पश्चिमदलं स्फटिकवर्णं तदा क्रीडाविनोदे मतिर्भवति। यदा वायव्यदले विश्रमते वायव्य दलं माणिक्यवर्णं तदा गमनचलनवैराग्यमतिर्भवति। यदोत्तरदले

विश्रमते तदुत्तरदलं पीतवर्णं तदा सुखशृङ्गारमतिर्भवति। यदेशानदले विश्रमते तदीशानदलं वैडूर्यवर्णं तदा दानादिकृपामतिर्भवति यदा संधिसंधिषु मतिर्भवति तदा वातपित्तश्लेष्ममहाव्याधिप्रकोपो भवति। यदा मध्ये तिष्ठति तदा सर्वं जानाति गायति नृत्यति पठत्यानन्दं करोति।

पूर्वोक्तत्रिकोणस्थानादुपरि पृथिव्यादिपञ्चवर्णकं ध्येयम्। प्राणादिपञ्चवायुश्च बीजं वर्णं च स्थानकम्। यकारं प्राणबीजं च नीलजीमूतसन्निभम्। रकारमग्निबीजं च अपानादित्यसन्निभम्। ।९५। लकारं पृथिवीरूपं व्यानं बन्धूकसंनिभम्। वकारं जीवबीजं च उदानं शङ्खवर्णकम्॥ ९६॥ हकारं वियत्स्वरूपं च समानं स्फटिकप्रभम्। हृन्नाभिनासाकर्णं च पादाङ्गुष्ठादिसंस्थितम्। ९७।

(ध्यानबिन्दूपनिषत्)

अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनुक्रमात्। ३६। रक्तवर्णो मणिप्रख्यः प्राणवायुः प्रकीर्तितः। अपानस्तस्य मध्येतु इन्द्रगोपसमप्रभः। ३७। समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरधवलप्रभः अपाण्डर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिः समप्रभः। ३८। यस्येदं मण्डलं भित्त्वा मारुतो याति मूर्धनि। यत्र यत्र म्रियेद्वापि न स भूयोऽभिजायते न स भूयोऽभिजायत इत्युपनिषत्। ३९। ॐ सह नाववत्विति शान्तिः। (अमृतनादोपनिषत्)

पीतवर्णं चतुष्कोणं ··· पार्थिवंतत्त्वं ··· श्वेतमर्धेंदुसंकाशं ··· वारुणंतत्त्वं ··· रक्तंत्रिकोणं ··· तैजसंतत्त्वं ··· नीलं च वर्तुलाकारं ···मारुतंतत्त्वं ··· वर्णाकारे ··· अव्यक्तं ··· नाभसंतत्त्वं।

(शिवस्वरोदय)

कुण्डली से वर्णोत्पत्ति प्रकार— (प्राणतोषिणी)

··· ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे। ··· मेरुपृष्ठे स्थितश्चन्द्रो द्विरष्टकलया-न्वितः। अहर्निशं तुषाराभां धारां वर्षत्यधोमुखः। सुधांशुर्द्विविधस्रावी पीयूषबिन्दुरेव च। ··· शङ्खिनीमूलं संव्याप्य सूर्य्यस्तिष्ठति देहिनाम्। द्वादशकलया सूर्य्यो वह्निर्दशकलात्मकः। सर्वेषां देहिनां देहे मता अन्नादिपाचकः। तुषारं वर्षते चन्द्रो रविः शुष्यति सर्वदा। संयोगेन स्थितः प्राणो वियोगे मरणं भवेत्। ··· प्राणश्चन्द्रमयः प्रोक्तोऽपानः सूर्यमयस्तथा। ··· मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु तारः पराख्यः पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धियुङ्मध्यमाख्यम्। वक्त्रे वैखर्य्यथ रुरुदिषोरस्य जन्तोः सुषुम्नाबद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः। जन्मानन्तरबालकरोदनस्य व्यक्ताव्यक्त-वर्णात्मकत्वात् वर्णोत्पत्तिप्रकारं वदन् कुण्डलिनीतः सामान्यतः सर्ववर्णानामुत्पत्तिं दर्शितवान्।

प्रस्तुतं वर्णोत्पत्तिप्रकारं क्रमेण दर्शयति प्रपञ्चसारे। अवैशद्यान्मुखश्रोतोमार्गस्याविशदा-क्षरम्। अव्यक्तव्यक्तं प्रलपति यदा सा कुण्डली तदा। मूलाधारे विध्वनति सुषुम्नां वेष्टते मुहुः। मुखश्रोत्रमार्गस्यावैषम्यादनैर्मल्याद्धेतोर्यदा सा कुण्डली अविशदाक्षरमविस्पष्टमक्षरं यत्राव्यक्ते ध्वनाविति शेषस्तं प्रलपति। अर्थात् कलभाषणादिकं करोति तदा मूलाधारे विध्वनति शब्दायते सुषुम्नाञ्च मुहुर्वेष्टते इत्यन्वयः।

आत्मा बुद्ध्या समर्थ्यार्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति ध्वनिमिति। कण्ठादीत्यादिशब्देन ताल्वादि। तथाच

शिक्षासूत्रम् ॥ अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु चेति । पञ्चाशन्मातृकावर्णोच्चारणं गुरुतोऽभ्यसेदिति वक्ष्यमाणवचनेन मनुष्यस्य वर्णोच्चारणेऽपि गुरुरूपसाधुसंसर्गः पक्षिणामिव कारणात्मकत्वेनावधार्यः । पूर्वस्मिन् वर्णानां सोमसूर्य्याग्निरूपत्वं सामान्यत उक्तम् । अधुना तद्विशेषयति शारदायाम् । एषु स्वराः स्मृताः सौम्याः स्पर्शाः सौराः शुभोदयाः । आग्नेया व्यापकाः सर्वे सोमसूर्य्याग्निरूपिणः ॥ एषु वर्णेषु । स्वराः षोडश विख्याताः स्पर्शास्ते पञ्चविंशतिः तत्त्वात्मानः स्मृताः स्पर्शा मकारः पुरुषो यतः । यस्मान्मकारः पुरुषः परमात्मा रविस्वरूपस्तस्मात् ककारादिभपर्य्यन्तास्तत्त्वात्मानः प्रकृत्यादिचतुर्विंशतितत्त्वमया इत्यर्थः । अतएव सर्वबीजेषु विष्णुरूपमकारयोगात् पुरुषैवयं तेषामिति मन्तव्यम् ।

सगुण शिवात् शक्त्युत्पत्ति—(कुण्डली उत्पत्ति, त्रिविन्दु कथनादि)

सारदातिलके प्रथम पटले । सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् । आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः । सच्चिदानन्दविभवादित्यनेन अविद्योपहितत्वेऽपीश्वरस्य स्वरूपहानिरिति राघवभट्टः । सकलात् सप्रकृतिकादीश्वरात् शक्तिरासीदिति योजना । तथा च तत्रैव । निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः । निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः । ··· ननु शक्तिसहितादेव पुनः शक्तिः कथमासीदिति चेत् सत्यं या अनादिरूपा चैतन्याध्यासेन महाप्रलये सूक्ष्मतया स्थिता तस्या गुणवैषम्यात्तु सगुणतया सात्त्विकराजसतामसत्वसृष्ट्यप्रपञ्चसाधने तद्गुणावस्थाने वोपचारादुत्पत्तिरिति सांख्यमतमाश्रित्य ग्रन्थकारस्योक्तिरियमिति ज्ञेयम् । ··· तदुक्त–

वामवीसंहितापि । शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्वैकतां गता । ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिवेति । कुब्जिका तन्त्रे प्रथमपटले तु । आसीद्बिन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिः समुद्भवा । नादरूपा महेशानि ! चिद्रूपा परमा कला । नादाच्चैव समुत्पन्ना अर्द्धबिन्दुर्महेश्वरि ! । सार्द्धत्रित्रय-विन्दुभूर्या भुजङ्गी कुलकुण्डली । विगुणा सगुणा देवि ! ब्रह्मरूपा सनातनी । चैतन्यरूपिणी देवी सर्वभूतप्रकाशिनी । आनन्दरूपिणी देवी ब्रह्मा नन्दप्रकाशिनी । ... इति सगुणशिवाच्छक्त्युत्पत्तिः । तस्याः शक्तेस्तु नादविन्दुसृष्ट्युपयोग्यवस्थारूपी । तदुक्तं प्रयोगसारे । नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी । शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता । इति शक्त्यवस्थाभेदः । इच्छासत्वादिरूपतया विन्दुरपि त्रिविध उक्तः ... शिवशक्तिमयः साक्षात्त्रिधासौ भिद्यते पुनः । असौ विन्दुः शिवमयः शक्तिमयं उभयमयश्चेति त्रिविधः ... बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र वीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् । तयोर्योगे भवेन्नादस्ताभ्यो जातास्त्रिशक्तयः । इति त्रिविन्दुकथनम् । ... ते ज्ञाने-क्रियात्मानो वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणः । ... ते रुद्रब्रह्मरमाधिपाः शिवब्रह्मनारायणा यथाक्रमं ज्ञानशक्ती-च्छाशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपा इत्यर्थः ।

बीजाक्षरात्परं विन्दुं नादं विन्दोः परे स्थितम् । सुशब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥ ४ ॥ (ध्यानविन्दुपनिषत्)

"सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् । आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादबिन्दु-समुद्भवः" ✽ "नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामय-पदोन्मुखी । यदा शक्तिः स्फुरद्रूपा पुंरूपा सा तदा

स्मृता" ॥ ❀ "सा तत्वसञ्ज्ञा चिन्मात्र-ज्योतिषः सन्निधेस्तदा । विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति विन्दुताम् " ❀ 'अभिव्यक्ता पराशक्तिरविनाभावलक्षणा । अखण्डा परचिच्छक्ति-व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः । समस्त-तत्त्वभावेन विवर्त्तेच्छा-समन्विता । प्रयाति विन्दुभावञ्च क्रियाप्राधान्य-लक्षणाम्'। ❀ विन्दुः शिवात्मकस्तत्र वीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् । तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो जाता त्रिशक्तयः । ❀ "क्रियायाः शक्तिप्रधानायाः शब्दशब्दार्थ-कारणम् । प्रकृते विन्दुरूपिण्याः शब्दब्रह्माभवत्परम्" । ❀ "अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः" । ❀ सोऽन्तरात्मा तदा देवो नादात्मा यतते स्वयम् । यथा संस्थान-भेदेन स भूयो वर्णतां गतः ॥ वायुना प्रेर्य्यमाणोऽसौ पिण्डाद्व्यक्तिं प्रयाति हि" ॥ ❀ "सूक्ष्मा कुण्डलिनी मध्ये ज्योतिर्मात्रास्वरूपिणी । अश्रोत्रविषया तस्मादुद्गच्छन्त्यूर्द्धगामिनी ॥ १ ॥ स्वयं प्रकाशा पश्यन्ती सुषुम्णामाश्रिता भवेत् । सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी । २ । ततः सङ्कल्पमात्रा स्यादविभक्तोर्ध्वगामिनी । सैवोरः-कण्ठ-तालुस्था-शिरो-घ्राणोदर-स्थिता । ३ । जिह्वामूलोष्ठ-निश्वास-रूपवर्ण-परिग्रहा । शब्दप्रपञ्च-जननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी" । ४ ।❀ शब्दब्रह्मैव परानाम शब्दावस्था, सैव चैतन्यरूपा कुण्डलिनी शक्तिः । ततः पश्यन्त्यादिरूपेण वेदराशिराविर्भवति इयं शब्दसृष्टिः ।

(ध्यानविन्दूपनिषत्, श्रीनारायणभट्टकृतदीपिकाख्यटीका सहित)

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति । (निरुक्त परिशिष्ट)

प्रकरण ३

चक्रों और कुण्डलिनी पर कुछ विशेष विचार—

पहले प्रकरणोंमें बताया गया है कि शरीरस्थ षटचक्रों के ज्ञान तथा विधिवत योगाभ्यास से व्याख्यान कुछ सिद्धियां अवश्य प्राप्त होती हैं। हर अल्पज्ञ जीव के साथ २ साक्षीभूत सर्वज्ञ परमात्मा भी सर्वदा वर्तमान रहते हैं। मनोन्मुखी होने से मनुष्य का चित्त एकाग्र नहीं रहने पाता। अर्थात भिन्न २ प्रकार के इन्द्रिय विषयों या अर्थों (sense-det ι) या भोगों की ओर दौड़ता रहता है। दुनियां के कोई वस्तु भी ईश्वर और उसकी त्रिगुणात्मक तथा पञ्चात्मक शक्ति से रिक्त नहीं है। जैसे एक कटोरी में स्थिर जल पर सूर्य का प्रकाश स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है और पानी के जल्दी २ हिलने के समय सूर्य का प्रतिबिम्ब साफ नहीं दिखाई पड़ता उसी तरह अशुद्ध या चंचल मन पर परमात्मा का पूरा प्रकाश नहीं पड़ने पाता। सूर्य की किरणों को आतिशी शीशे के द्वारा इकट्ठा करके रूई या कागज में आग लगाई जा सकी है, उसी तरह शुद्ध चित्त या मन की ताक़त (शक्ति) भी सर्वशक्तिमान परमात्मा की ओर लगाये रहने से, ज्ञानी योगाभ्यासियों की शक्ति भी बढ़ जाती है। उनमें अभ्यास से अणिमादि सिद्धियां या योग ऐश्वर्य-बल प्रकट होने लगते हैं। इन चमत्कारों को देख कर अनेक मनुष्य चेले बन कर उस शक्ति

उत्पादन के रहस्य को उनसे सीखना चाहते हैं। और ऐसे ही चेलों ने अपने गुरुओं के नाम से अनेक पन्थ चला दिये हैं। मैंने इन षटचक्रों का वर्णन कई सन्तों के ग्रन्थों में पाया है। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध सन्त चरणदास जी के नाम से प्रकाशित षटचक्र का वर्णन आगे दिया जायगा। कबीर, ग़रीबदास, सत्यनामी आदि समाज के प्रवर्त्तक सन्त भक्तों के लेखों में भी इन चक्रों से सम्बन्ध रखने वाले शब्द मिलते हैं। सनातन वैदिक चक्रों का वर्णन उपनिषदों में मिलता है। कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन सनातन वैदिक विज्ञान के अनुकूल कई तन्त्रों तथा पुराणों में भी मिलता है। इनके अतिरिक्त भारत की थियोसौफिकल सोसायटी के प्रसिद्ध लैडबीटर साहब द्वारा प्रकाशित चक्रों (Chakras by the Rt. Rev. C. W. Leadbeater) और सर वुडरौफ की सरपेन्ट पावर (Sir Woodroffe's Serpent Power,) में कुण्डलिनी शक्ति तथा चक्रों का वर्णन है।

उपरोक्त लैडबीटर साहब के अंगरेजी में प्रकाशित चक्रों से पता चलता है कि मिश्र (Egypt) देश में और जापान में भी इस विद्या का किसी काल में प्रचार था। जर्मन देश के मिस्टिक गिकटैल (German mystic Johann Georg Gichtel) के वर्णन के आधार पर चक्रों का एक चित्र भी उक्त ग्रन्थ में प्रकाशित है। मिस्टिक गिकटेल (Gichtel) के चक्र विवरण उसकी थियासोफिका प्रैकटिका (Theosophica Practica) में १६९६ से १७१० तक प्रकाशित किये गये हैं। लैडबीटर साहब ने अपनी "हिडन लाइफ इन फ्री मेसनरी (Hidden

life in Free Masonry में किस प्रकार से इन चक्रों (Forces) को जगाया जाता या उत्तेजित किया जाता है और उनका प्रभाव किस तरह काम (Passion) बढ़ाता है तथा वह मनकी चंचलता को रोकने में कितने सहायक होते हैं। रैवरैन्ड लैडबीटर साहेब ने इनकी ओर, जहां तक वे फ्री मेसन्स के नियमों के भीतर वर्णन कर सके हैं संकेत किया है।

बौद्ध धर्म में चक्र शब्द से चक्र का ही आशय है। तिब्बत के लामा साधु भी नित्य "ॐ मणि पद्मे हूँ" का जप आज भी करते हैं। मणिपद्म मणिपूर चक्र को ही कहते हैं। जापान के राजवंशी क्षत्रियगण अपनी उत्पत्ति सूर्य से बताते हैं। अर्थात् अपने को सूर्यवंशी कहते हैं। संभव है पूर्व काल में कोई सूर्यवंशी क्षत्री राजा भारत से यहां आकर बस गया हो।

कुण्डलिनी शक्ति के अधिष्ठान के विषय में संस्कृत के ग्रन्थों में भी मतभेद है। हृदयचक्र, नाभिचक्र, मूलाधार और स्वाधिष्ठान तक इसके भिन्न २ स्थान बताये गये हैं। बहुमत से कुण्डलिनी शक्ति (serpent power, serpent fire) का प्रधान स्थान मूलाधार पद्म ही माना गया है। कुण्डलिनी से उत्पन्न प्राणधारिणी "हंसः सोऽहं" गायत्री, जागृत होने पर ही जीव को सहस्रार तक ले जाती है।

लैडबीटर साहब के और जर्मन योगी गिकटैल के चक्र वर्णनों में प्लीहा चक्र का वर्णन विशेष मिलता है। किन्तु हमारे देश के पुराण, तन्त्र, तथा उपनिषदों के षटचक्र विवरण में प्लीहा नाम के चक्र का वर्णन नहीं मिलता। उपनिषदों में अष्टदल पद्म नाम के एक विशेष चक्र

का वर्णन हृदय में अवश्य बताया गया है।

प्लीहा से सम्बन्ध रखने वाली प्राणवाही नाड़ी (uerves) अवश्य होती है। किन्तु आजकल सर्जन्स (surgeons) लोग प्लीहा को शरीर से बिना, किसी विशेष उपद्रव के काटकर पृथक कर सके हैं। किन्तु सुषुम्नान्तर्गत चक्रों के (nerve centres or Forces) को या उनसे निकली प्राणवाही नाड़ियों (nerves) को हानि पहुंचने से प्राणवाही नाड़ियों के रोगों (Diseases of the nervous system) के लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

इन चक्रों के वर्णन संस्कृत में ही दिये गये हैं। कुछ कारण जिनसे ऐसा करना पड़ा वे ये हैं। बोल चाल की हिन्दी में वैदिक शब्दों के पूर्ण भावों का प्रकाशन करना असम्भव है। लैड बीटर साहब के चक्र विवरण और उनके अनुवादों से ही इस कथन की सत्यता का अनुमान हो सकता है। उन्होंने चक्र सम्बन्धी अनेक गुह्य बातों पर, (जैसे मातृका वर्णन, कुण्डलिनी के वास्तविक स्वरूप तथा जीव शरीर में उत्पत्ति कुण्डलिनी से पञ्चाशत् मातृका वर्णोत्पत्ति आदि ऐसी अनेक और बातों) या विषयों पर विशेष प्रकाश नहीं डाला। योरप वाले विज्ञानी आज तक भी पञ्चतत्वों के अनुवाद बिलकुल स्थूल दृष्टि से ही करते आ रहे हैं। षटचक्रों में दिये तत्व-बीजों के वाहन सम्बन्धी विषय को वे नहीं समझे। उन्होंने पृथ्वी बीज लँ के हाथी नाम के वाहन का अनुवाद एलीफैन्ट (Elephant animal) किया है। पृथ्वी बीज अत्यन्त सूक्ष्म तात्विक कण या अणु हैं। पार्थिव पदार्थों (Solids) में ऐसे अणुओं की गति सीमित और

अत्यन्त मन्द हो सकी है। ईसवी १९४२ में लन्दन से प्रकाशित कास्मिकल फिजिक्स में सौलिड्स के भीतर अणुओं की चाल अत्यन्त सीमित और सुस्त (movements of atoms or molecules inside the solids, as glass or metals are described as limited & slow)। इसी कारण अनाहद चक्र में वायु के यँ बीज के वाहन (vehicle) की उपमा मृग (deer) से दी गई है। वायु के अणु एक ही स्थान में कभी नहीं रहते और मृग की तेज चाल की तरह एक स्थान से दूसरे में उछल २ कर इधर उधर तिरछे २ भागते रहते हैं। आज्ञा चक्र तक तो जीव वायु रूपी रथ पर चढ़ कर पहुंच सकता है। किन्तु वहां से सहस्रदल पद्म तक पहुंचने के लिये अगत्र हंस या तप्त लोह शलाका तुल्य कुण्डलिनी शक्ति ही पहुंचाती है।

वैदिक षटचक्रों का प्रचार तथा शिक्षा के अभाव के कारण ही अपने २ सन्तों या गुरुओं के नाम से शिष्यों ने भिन्न २ प्रान्तों में अनेक सन्तमतों या पन्थों की स्थापना कर ली है। इनसे उपकार इतना ही हो सका है कि देश भर में अभी तक इस गुह्य ज्ञान का प्रचार होता चला आ रहा है। और सनातन वैदिक विज्ञान तथा धर्म के मूल आधार की ऐक्यता (Unity) का एक चिन्ह दुनियां के अधिकांश मनुष्यों में अभी तक वर्तमान है।

संस्कृत विद्या के लोप हो जाने से इस ज्ञान का सम्बन्ध वेदों से पृथक हो जाने से भारत की संस्कृति के आधारभूत अत्यन्त उपयोगी वैदिक विद्या के पूर्ण ज्ञाताओं के कमी या अभाव के कारण अनेक पन्थ निकल पड़े और देश भर में धार्मिक फूट फैल गई। आज भी

अनेक हिन्दी कवि भूल से फूट फैलाने तथा वैज्ञानिक संस्कृति के मिटाने में प्रवृत्त हैं। इसमें सनातन वैदिक विज्ञान का कोई दोष नहीं है। वैदिक तात्विक विज्ञान जैसा आगे बताया गया है वर्तमान योरोपियन साइन्स से जांच करने पर भी सत्य प्रमाणित या सिद्ध होता है।

भारत के सन्तों में उपरोक्त चक्रों या पद्मों का ज्ञान—

(श्री स्वामी चरणदास जी प्रकाशित अष्टांगयोग से)

दोहा—अब चक्कर वर्णन करूं, पाछे प्राणायाम। वरणूं नाड़ी सुषमना, सुधरैं सबही काम॥
हैं वै सूरति कमल को, छोड़े और विशाल। मूसूं लेकर शीशलौं एकहि जिनकी नाल॥
कुं०—मूलरंग पहिला कहूं, चक्कर तिहिं नावँ। चार पैंखरी तासु की, हैं जु गुदा के ठावँ॥
हैं जु गुदा के ठावँ, देह ताही पर साजै। चारों अक्षर तहां, देव गनेश विराजै॥
पवन सुरत हां लै धरै, खोलि कहैं शुकदेव। दूजा लिङ्गस्थानहीं, जाको सुन अब भेव॥
पीतवरण षट पैंखरी, नामजु स्वाधिष्ठान। षट अक्षर जापै दिये, ब्रह्मा दैवत जान॥
ब्रह्मा दैवत जान, संग सावित्री वासा। इन्द्रसहित सबदेव, तहां सबही का वासा॥
मणिपरक चक्कर कहूं, तीजा नाभिस्थान। नीलवरण दश पैंखरी, दश अक्षर परमान॥
दोहा—विष्णु जहां का देवता, महालक्ष्मी संग। चरणदास अब कहतहूं, चौथे को परसंग॥
अनहदचक्र हिरदय विषे, द्वादशदल अरु श्वेत। शिवशक्ती जहँ देवता, द्वादश अक्षर भेद॥

पँचवा चक्कर कंठ में, विशुद्ध नाम जिहिकर। षोड़श दल जीवदेवता षोडश अक्षर हेर ॥
छठयों भौंहन बीच में, अज्ञा चक्कर सोय। ज्योति देवता जानिये, दो दल अक्षर दोय ॥

शिष्यवचन।

दोहा–कमलोंपर अक्षर कहे, समझ न आई सोहि। कौन कौन अक्षर तहां, सतगुरु कहिये मोहिं।

गुरुवचन

पहिला कमल अधार सुनाऊं। व श ष स अक्षर वरण बताऊं ॥
दूजा कमल जु स्वाधिष्ठाना। ब भ म य र ल जु वखाना ॥
तृतीय मणिपूरक जो कहिये। ड ढ ण त थ भी लहिये ॥
द ध न प फ जो गाये। ये दश अक्षर वरण बताये ॥
चौथे चक्र अनाहद माहीं। द्वादश अक्षर वरण बनाहीं ॥
क ख ग घ ङ जो जाना। च छ ज झ ञ ट ठ जु माना ॥
पँचवें षोडश विशुद्ध जो आछे। आदि अकार अकार सु पाछे ॥
छठा जो अज्ञा चक्कर मानो। हंस वरण दो अक्षर जानो।

मूल कमलदल चारको, लाल पँखुरी रंग। गौरीसुत वामो कियो, छःसै जाप इकंग।
षटदलकमलपियरेवरण, नाभी तल संभाल। षट्सहस्र जपि जापको, ब्रह्म सावित्री नाल।
दश पँखुरी कमल है, नील वरण सो नाम। विष्णुलक्ष्मीवास कियो, षटसहस्र जप।

अनहद चक्र हृदय रहै, द्वादश दल अरु श्वेत। षट सहस्र जप जापले, शिव शक्ति तहँ हेत।
षोडशदलका कमल है, कण्ठ नाल शशि रूप। जाप सहस्र जहां जप, नहं लहं आत्म रूप।
आज्ञाचक्र द्विदल कमल, त्रिकुटी धाम अनूप। जाप सहस्र जहां जप पावे ज्योति स्वरूप।
दल हजार का कमल है, नभ मण्डल में बास। जाप सहस्र जहां जप तेज पुंज परकास।
योग युक्तिकरि खोजिले, सुरत निरत करचीन। दश प्रकार अनहद बजै होय जहां लवलीन।

कबीरदास के शब्द—

काया गढ़ अजब बनाई सन्तो निरखहु मन ठहराई॥ सत्तर हाट बहत्तर कोठा चौसठ यन्त्र लगाई। सो थवई खोजो मेरे भाई जिन यह महल बनाई॥ कायागढ़०॥ पांच पचनियां में एक नागर एकै राह चलाई। भेव बिना कछु कहत बनत नहीं राखहु मनहिं छिपाई॥ कायागढ़०॥ कहत कबीर सुनो भाई साधो छाड़हु सब चतुराई। दश दरवजवा जब यम घेरे तब कहां जाहु पराई॥ कायागढ़०॥

धरनीदास के शब्द—

कोई लोढ़त सन्त सुजान काया बन फूलि रही॥ १। एका एक मिले गुरु पूरा मूलमन्त्र जो पावे। सकल साधु की बानी बूझे मन प्रतीत बढ़ावे॥ कोई लो०॥ २। दूका दुई तजो नर दुविधा रज सत तम गुण त्यागो। सत गुरु मारग उर्द्ध निरखो क्या सोये उठि जागो॥ कोई लो०॥ ३। तीया तीन त्रिवेणी संगम जहां अगम स्थाना। ईर्षा तृष्णा मारिके कोई मज्जन कर स्नाना॥

कोई लो० ॥ ४ । चौथे चार चतुर नर साधे चौथे पद को लागे । चंद्र के प्रेम हिंडोला झूले चितवत मन अनुरागे ॥ कोई लो० ॥ ५ । पांचे पांच पचीसो वश कर सांच हिया ठहरावे । इड़ा, पिंगला, सुषुमन साधे ध्रुवमण्डल उठिधावे ॥ कोई लो० ॥ ६ । छठवें छवों चक्र धरि वेधे शून्य भवन मन लावे । विकसित कमल हिया को परिचे तब चन्द्रा दरसावे ॥ कोई लो० ॥ ७ । साते सात सहज ध्यान उपजे सुनि २ आनन्द बाढ़े । ऐसो दीनदयाल सांच गुरु बूड़त भव जल काढ़े ॥ कोई लो० ॥ ८। आठे आठ गगन गुफा में दृष्टि लगावे सोई । आतम ने परमातम चीन्हे ताहि तुले नहिं कोई ॥ कोई लो० ॥ ९ । नउवे नवो द्वार होइ निरखो जगे जगामग ज्योती । दामिन दमके अमृत बरसे झरे झगाझर मोती ॥ कोई लो० ॥ १० । दसे दहाई देह पाइ नर जो पढ़ एक पहाड़ा । धरनीदास तासु पद बन्दे निशि दिन बारम्बारा ॥ कोई लो० ॥

राम रतन रंग दीनी चादर है झीनी झीनी । आठ कमल दल चरखा चाले । पाञ्चतत्व गुन तीनी । नौ दस मास सिरजते लागे मूरख मैली कीन्हीं । जब वह चादर बन कर आई रंगरेजों को दीन्हीं । प्रेम प्रीति का रंग चढ़ाया सतगुरु ने गुन दीन्हीं । रयदास भक्त नामदेव सेना धानू उतम चीन्हीं । हितकर ओढ़ा सन्तन से हूँ । मीरा को भई सीन्हीं । ध्रुव ओढ़ी प्रहलाद ने ओढ़ी । काया सुखदय निर्मल कीन्हीं । दास कबीर जुगत से ओढ़ी । ज्यों की त्यों धर दीन्हीं । राम रतन रंगदीनी चादर है झीनी झीनी । (एक कबीर पंथी द्वारा)

हिन्दी जानने वालों के लिये कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन, उसका शरीर में स्थान, उसके

जगाने की विधि, ध्यान द्वारा मूलाधार चक्र से सहस्र दल पद्म तक चढ़ाने (आरोहण क्रिया) और फिर सहस्र दल से मूलाधार तक कुण्डलिनी का उतारना आदि-कुण्डलिनी सम्बन्धी विचारों को संस्कृत में और उद्धृत करने के पश्चात्, संक्षेप से प्रकाशित किये जायेंगे।

कुण्डलिनी के जगाने का प्रयत्न केवल पुस्तकों को पढ़कर ही नहीं करना चाहिये। किन्तु किसी अनुभवी योगी के निरीक्षण में ही और उसके आदेशानुसार यम नियमादि का पालन करते और योग के अनुकूल युक्त अहार विहार का सेवन करते हुए, कुण्डलिनी शक्ति के उद्‌बोधन क्रिया का अभ्यास करना चाहिये।

कुण्डलिनी ब्रह्म शक्ति है। सहस्रार में निर्गुण सदाशिव का स्थान है। शिव शक्ति के योग को लय योग कहते हैं। राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, भक्तियोग और मन्त्रयोग के अभ्यासी साधकों को भी इन शरीरस्थ चक्रों के अस्तित्व और महत्व का ज्ञान होना चाहिये। साधन विधि योग भेदों के अनुसार पृथक २ होती है। बिना अनुभवी गुरु के निरीक्षण में किसी भी योगका मनमानी साधन नहीं करना चाहिये।

योग के अनेक विषयों को जैसे योगसिद्धियों को अंगरेजी पढ़े लिखे लोग बिल्कुल गप और झूठ समझते हैं। विदेशी थीयोसोफियन्स अब तक योग के गुप्त साधनों का इतना अनुसंधान कर चुके हैं। कि वे स्वयं उसके अनुभव गम्य चक्र सम्बन्धी सिद्धान्तों में विश्वास करने लगे हैं। जैसा भारत संस्कृति प्रेमी विदेशी विद्वानों के वचनों से प्रमाणित होता है। यथा:—

The Hindu Yogis, for whom the books, which have come down to us, were written, were not particularly interested in the physiological and anatomical features of the body, but were engaged in practising meditation and arousing kundalini for the purpose of elevating their consciousness or rising to higher planes. This may be the reason why in the Sanskrit works little or nothing is said about the surface chakras, but much about the centres in the spine and the transit of kundalini through these.

Kundalini is described as a devi or goddess luminous as lightning, who lies asleep in the root chakra, coiled like a serpent three and a half times round the 'swayambhu linga' which is there, and closing the entrance to the sushumna with her head. Nothing is said as to the outer layer of the force being active in all persons, but this fact is indicated in the statement that even as she sleeps she "maintains all breathing creatures". And she is spoken of as the 'Shabda Brahman' in human bodies. 'Shabda means word or sound, ... probably we

should not be far wrong in associating these with our Western conceptions of the three states of body, soul and spirit, and a fourth which is union with the Divine or All-spirit.

The object of the yogis is to arouse the sleeping part of the kundalini, and then cause her to rise gradually up the sushumna canal. Various methods are prescribed for this purpose, including the use of the will, peculiar modes of breathing, mantras, and various postures and movements. 'The Shiva Samhita' described ten 'mudras' which it declares to be the best for this purpose; most of which involve all these efforts at the same time. In writing of the effect of these methods, Avalon describes the awakening of the inner layers of kundalini as follow:

The heat in the body then becomes very powerful, and kundalini, feeling it, awakens from her sleep, just as a serpent struck by a stick hisses and straightens itself. Then it enters the Sushumna.

It is said that in some cases kundalini has been awakened not

only by the will but also by an accident—by a blow or by physical pressure. I heard recently from one of our Theosophical lecturers that he had come across an example of the kind when touring in Canada. A lady, who knew nothing at all of these matters, fell down the cellar steps in her house. She lay for some time unconscious. and when she awoke she found herself clairvoyant, able to read the thoughts passing in other people's minds, and to see what was going on in every room in the house; and this clairvoyance has remained a permanent possession. One assumes that in this case in falling the lady must have received a blow at the base of the spine exactly in such a position and of such a nature as to shock the 'kundalini into partial activity; or of course it may have been some other centre that was thus artificially stimulated. Ref. The Chakras A monograph by The Rt. Rev. C. W. Leadbeater (1927).

कुण्डलिनी शक्ति—

आगे बताया गया है कि यह शरीर क्षुद्र ब्रह्माण्ड है। इसके मेरुदण्ड (spine) में

सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर स्थित स्वयम्भू लिंग के ऊपर साढ़े तीन लपेटे लगाकर अपने मुख में अपनी पूंछ को दबा कर भुजङ्गी कुण्डलिनी सोती पड़ी है। सुषुम्ना नाड़ी को ब्रह्मनाड़ी, शांभवी-नाड़ी, श्मशान, वैष्णवीनाड़ी, मध्यमार्ग, मोक्षमार्ग, ब्रह्मरन्ध्र आदि भी कहते हैं। इसी मार्ग से जीवरूप शिव, कुण्डलिनी शक्ति के जगने पर शनैः २ योगाभ्यास द्वारा और कभी २ अन्य कारणों से शिर में स्थित सहस्रदल कमल में स्थित परमात्मा या सदाशिव के समीप पहुंचने पर मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। कुण्डलिनी सांसारिक पशु या जीवों के इस मार्ग या ब्रह्मद्वार या रन्ध्र को बड़ी होशियारी से बन्द रख कर रक्षा करती रहती है जिससे जीव वहां तक पहुंचने ही न पावे। जगद्गुरु योगेश्वर शंकरजी ने ६४ तंत्रों की रचना कर मनुष्योंके कल्याणार्थ, इसको जगाने और उसी के साथ२ ब्रह्म, विष्णु, रुद्रादि ग्रन्थियों का भेदन कर सहस्रार तक पहुंचाने की विधियां भी बता दी हैं। इस तरह जीवों को जन्म मरण के चक्कर से बचने के लिये विविध प्रकार के योग मार्गों का उपदेश किया है। इनका अभ्यास ज्ञानी योगी गुरुओं की देख रेख में ही करना चाहिये। इन शास्त्रों में अन्य सांसारिक कामनाओं या प्रयोजनों की सिद्धि के लिये भी उपाय बताये गये हैं।

यहां स्मरण रखना चाहिये कि जीव के अभ्युदय तथा मोक्ष (जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पाने) के लिये आर्य ग्रन्थों में बताये यम नियमादि का पालन अत्यन्त आवश्यक है। आर्य लोग जहां तक सम्भव होता था पापों से सदा दूर रहने का प्रयत्न करते रहते थे। यह

बात आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक के नीचे उद्धृत वचन से स्पष्ट है—"आरात् दूरात् पापात् यात् स आर्य्यः"।

योग के बहुत से गोप्य विषय योगियों ने किसी को नहीं सिखाये, क्योंकि योग्य सुपात्र अधिकारी या मन्त्रादि सुनने योग्य शिष्य उन्हें नहीं मिले। मनुष्यों को गर्भावस्था में अपने पिछले अनेक जन्मों का हाल ~~स्मरण रहता है~~। उस अवस्था में जो शुभ कामनायें और प्रतिज्ञायें जीव करता है वह नीचे गर्भोपनिषत् से उद्धृत की जाती हैं। उनको पढ़ कर, मनन करना चाहिये। और उनको काम में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। षटचक्र चिन्तन योग्य पारमार्थिक शरीर के उत्पत्ति के लिये गरुड़ पुराण के उपाय पूर्व में बताये गये हैं।

अथ नवमे मासि सर्वलक्षणज्ञानकरणसंपूर्णो भवति। पूर्वजाति स्मरति। शुभाशुभं च कर्म विन्दति। पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया। आहारा विविधा भुक्ताः पीता नाना विधाः स्तनाः। जातश्चैव मृतश्चैव जन्मचैव पुनः पुनः। यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः। अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्सांख्यं योगमभ्यसे। अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्। यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं ध्याये ब्रह्मसनातनम्। (गर्भोपनिषत्)

भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम् ।। १६ ।। ❀ विदेहानां देवानां भवप्रत्ययः तेहि स्वसंस्कार मात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्यपदमिव अनुभवन्तः स्वसंस्कारविपाकं तथा जातीयकमतिवाहयन्ति । तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्यपदमिव अनुभवन्ति यावन्नपुनरावर्त्तते अधिकारवशाच्चित्तमिति । (पातञ्जल योगदर्शन, समाधिपाद, सूत्र १६ का व्यासभाष्य)

दश मन्वन्तराणीह तिष्ठन्तीन्द्रियचिन्तकाः । भौतिकाश्च शतं पूर्णं सहस्रं त्वाभिमानिकाः ।। बौद्धा दश सहस्राणि तिष्ठन्ति विगतज्वराः । पूर्णं शतसहस्रन्तु तिष्ठन्त्यव्यक्तचिन्तकाः ।। निर्गुणं पुरुषं प्राप्य कालसंख्या न विद्यते । (वायुपुराण) विज्ञान भिक्षुयोग वार्तिक

उपरोक्त वैदिक शब्दों को सत्य मानकर, कम से कम सनातन धर्मावलम्बियों को अपनी गर्भावस्था की प्रतिज्ञाओं को नहीं भुलाना चाहिये और नारायण तथा महेश्वर की शरण में प्राप्त हो स्वधर्म पालन सहित उनकी श्रद्धा भक्ति से उपासना करना चाहिये । और सांख्य तथा योग का अभ्यास कर सनातन ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये । उपासना के लक्ष्यों को ठीक २ समझने के लिये वेदोक्त सृष्टिक्रम और पिण्ड, खण्ड ब्रह्माण्डादि के रचनात्मक मूलतत्वों और पिण्ड (पुरुष) और लोक में समानता का ठीक २ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । यह पूर्व में बताया गया है । मनमानी उपासना से मोक्ष (जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा) नहीं प्राप्त हो सक्ता । मोक्ष के आशय हैं त्रितापों या अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुःखों का अत्यन्ताभाव । येही जीवन मुक्त की दशा है । परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को न समझने से, इस सब को

वासुदेव समझ कर शुद्ध भाव से या चतुराई छोड़ कर व्यवहार करना असम्भव है। आज के कचहरियों में कपटी छली साक्षियों की जरूरत पड़ती है। अतः न्याय असम्भव हो जाता है। किन्तु सर्वव्यापी और सांस २ में वर्तमान प्राणस्वरूप परमात्मा को ही अपने सब कर्मों का साक्षी समझने वाले, मनुष्यके लिये किसी अन्य साखी या गवाह की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसे ही पुण्यात्मा पुरुषों से देश या मनुष्यमात्र की भलाई की आशा की जा सकती है। श्रुतियों के अनुसार आर्यदेश निवासी तीनों लोकों को मानते हैं। सांख्यदर्शन के अनुसार जैसा, पहले चरक के उद्धृत बचनों से दिखाया गया है, इस लोक में शरीर के त्याग के पश्चात् मनुष्य अपने कर्मानुसार सतोविशाल, रजोविशाल तथा तमोविशाल सृष्टि शरीर धारियों में जन्म पाता है। जो लोग केवल इसी लोक के अस्तित्व तथा एक जन्म ही को मानते हैं। उनको घूसखोरी आदि या बुरे हिंसक कर्मों से रोकना असंभव है। क्योंकि अगले जन्म में उनको ईश्वरी सजा का कोई भय नहीं रहता।

विदेशी विद्वान और विज्ञानी तो अपने देश की नदियों के जल को गंगोदक समान पवित्र तथा क्रिमि नाशक बनाना चाहते हैं। किन्तु गंगाजल को छोड़ कर अन्य जगत भर के जलों में कुछ काल पीछे अनेक प्रकार के रोग क्रिमि पैदा हो जाते हैं। विदेशी लोग अपने देशों में हिन्दुस्तानी गृहलक्ष्मियों या सतियोंके तुल्य स्त्रियों की और सत्पुरुषोंकी वृद्धिके लिये प्राकृत नियमों की खोज (हमारे मानव धर्मशास्त्र के आधार पर) कर रहे हैं। ये बातें यूजिनिक्स(Eugenics)

सम्बन्धी नवीन वैज्ञानिक साहित्य से मालूम हो सकती हैं। उनमें चार प्रकार के शुद्ध रक्त भेद (4 types of blood) पाये गये हैं। इन्हीं के आधार पर अमेरिका ऐसे बड़े देश में वहां के रहने वालों को उपरोक्त रक्त के चार भेदों के अनुसार मनुष्य जातियां, चार प्रकार के वर्णों में विभाजित की जा रही हैं। रक्त की परीक्षा के पश्चात् ही वहां स्त्री पुरुषों में विवाह की सलाह दी जाती है। जिससे सुशील, यशस्वी और शुभलक्षणों वाली संतान उत्पन्न हों। तथा मनुष्य जाति में थोड़े काल के पश्चात् नपुंसकता उत्पन्न होने से उनके वंशों का बिलकुल नाशन हो जाय। और उनसे व्यभिचारी, बदमाश, चोर, डाकू बेवकूफ ऐसी संतानें न पैदा होने पावें।

विदेशों में बहुत वर्षों के पहले से कुत्तों घोड़ों और पशुओं की शुद्ध जातियों के बनाये रखने के लिये, स्त्री और पुरुष पशुओं की रक्षा बड़े यत्न से की जाती है। खेद की बात है, कि हमारे आर्यदेश में अब मनुष्य जाति के वर्णाश्रम धर्मावलम्बी कुटुम्बों में भी ऐसी उत्तम प्रथा की ठीक २ परवाह नहीं की जाती है। (श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वरश्रीजगद्गुरुश्रीशङ्कराचार्य श्रीभारती-कृष्णतीर्थस्वामी के प्रवचन से) ❀ इसी लेख के षटचक्र चिन्तन योग्य पारमार्थिक शरीर के विषय में गरुड़ पुराण से कुछ उपदेश दिये गये हैं। उन पर ध्यान देने से उत्तम संतानें पैदा की जा सकती हैं। ऐसा न करने से अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग बढ़ते चले जाते हैं। सन्तान भी रोगी, कमजोर और अल्प आयुवाली होने लगी है।

शरीर में कुण्डलिनी शक्ति के जगने पर ही मनुष्य 'मनुष्य' कहलाता सकता है। वह जब

तक सोती रहती है तब तक मनुष्य पशु ही रहता है। श्री कबीरदास जी ने कुण्डलिनी का नाम 'सोहागिन' रखा है। "जागरी सोहागिन, जाग भजन से लागुरी"। शब्द से सिद्ध होता है। कुण्डलिनी शक्ति के जगने पर ही मंत्रादि द्वारा अनुष्ठानों से इष्ट सिद्धि की अधिक संभावना रहती है।

"सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः। सर्वेषां योगतंत्राणां तथाधारो हि कुण्डली"।
" कुटिलांगी कुण्डलिनी भुजङ्गी शक्तिरीश्वरी। कुण्डल्यरुन्धती चैव शब्दाःपर्यायवाचकाः॥ ४॥
... येन मार्गेण गंतव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्। मुखेनाच्छाद्य तद्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी। ६।
कन्दोर्ध्वं कुंण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्। बन्धनाय च मूढानां ... ...॥ ७॥
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परिकीर्तिता। सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः। ८।
गंगायमुनयोर्मध्ये बालरण्डा तपस्विनी। बलात्कारेण गृह्णीयात्तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ९॥ इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी। इड़ापिंगलयोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली॥ ११०॥

(हठयोग प्रदीपिका तृतीयोपदेशः)

अष्टधा कुण्डली भूता मृज्वी कुर्यात्तु कुण्डलीम् (योगशिखोपनिषत्)

मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता। शायिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता।

(घेरण्ड संहिता)

कुण्डले अस्याः स्तः इति कुण्डलिनी। मूलाधारस्थ वह्न्यात्मतेजो मध्ये व्यवस्थिता।

जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारा तैजसी। महाकुण्डलिनी प्रोक्ता पर ब्रह्मस्वरूपिणी। शब्द ब्रह्ममयी देवी ऐकानेकाक्षराकृतिः। शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाशुभा।

(योगकुंडल्युपनिषत्)

कुंडलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते। यथास्मिन् चक्रेकुमारी कुमारावस्थामापन्ना प्रथम सुप्तोत्थिता मन्द्रयेत मन्द्रं स्वरं करोति। पुरं हिरण्ययमयीं ब्रह्माविवेशा पराजिता (यजुर्वेद)

देहेऽस्मिञ्जीवः प्राणारूढा भवेत्। नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वं कुण्डलीस्थानम्। अष्टप्रकृतिरूपाष्टधा कुण्डलीकृता कुण्डलिनी शक्तिर्भवति। यथावद्वायुसंचारं जलान्नादीनि परितः स्कन्धः पार्श्वेषु निरुध्यैनं मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रं योगकाले चापानेनाग्निना च स्फुरति। हृदयाकाशे महोज्वला ज्ञानरूपा भवति। मध्यस्थ कुण्डलिनीमाश्रित्य मुख्या नाड्यश्चतुर्दश भवन्ति ...... । आस्यनासिकाकण्ठनाभिपादाङ्गुष्ठद्वय कुण्डल्यधश्चोर्ध्वभागेषु प्राणः संचरति।

(शाण्डिल्योपनिषत्)

पश्चिमाभिमुखी योनिः गुदमेढ्रान्तरालगा। तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ति कुण्डली सदा। ७९। संवेष्ठ्य सकलानाड़ीः सार्धत्रिकुटिलाकृतिः मुखेनिवेश्य सा पुच्छः सुषुम्णाविवरे स्थिता। सुप्ता नागोपमाह्येषा स्फुरन्ती प्रभयास्वया। अहिवत्सन्धिसंस्थाना वाग्देवी बीजसंज्ञिका। ८१। ज्ञेया शक्तिरियं विष्णोर्निर्मला स्वर्णभास्वरा। सत्वंरजस्तमश्चेतिगुणत्रय प्रसूतिका। ८२।

(शिवसंहिता)

कुल कुण्डलिनी के स्वरूप स्थानादि के प्रकाशक थोड़े वचन—

मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी। प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह। ६६। सूचिवद्गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया। उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्। ६७। कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत्। ६८। ... ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः। अब्दादूर्ध्वं भवेत्सिद्धो नात्र कार्या विचारणा। ७२। कन्दोर्ध्वकुण्डली शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनम् अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः। ७३। (ध्यानबिन्दूपनिषत्)

"देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्। गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम् । १६८। शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते। यत्र कुण्डलिनीनाम परा शक्तिः प्रतिष्ठिता। १६९। यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्माद्वह्निः प्रवर्तते। यस्मादुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्तते। १७०। यस्मा-दुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः। तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदं। १७१। (योगशिखोपनिषत्)

त्रिशङ्खवज्रमोंकारमूर्ध्वनालं भ्रुवोर्मुखम्। कुण्डलीं चालयन्प्राणान्भेदयन्शशिमण्डलम्। ७४। साधयन्वज्रकुम्भानि नव द्वाराणि बन्धयेत्। सुमनःपवनारूढः सरागो निर्गुणस्तथा। ७५। ब्रह्मस्थाने तु नादः स्याच्छाकिन्यामृतवर्षिणी। षट्चक्रमण्डलोद्धारं ज्ञानदीपं प्रकाशयेत। ७६।

(ब्रह्मविद्योपनिषत्)

ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः। वायुः परिचितो यत्नादग्निना सह कुण्डलीम्।

। ८१ । भावयित्वा सुषुम्नायां प्रविशेदनिरोधतः वायुनां सह चित्तं च प्रविशेच्च महापथम् ।
(योगतत्वोपनिषत्)

देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बूनदप्रभम् । त्रिकोणं द्विपदामन्यच्चतुरस्रं चतुष्पदम् । ५६ । वृत्तं विहङ्गमानां तु षडस्रं सर्पजन्मनाम । अष्टास्रं स्वेदजानां तु तस्मिन्दीपवदुज्जवलम् । कन्द-स्थानं मनुष्याणां देहमध्यं नवाङ्गुलम् । चतुरङ्गुलमुत्सेधं चतुरङ्गुलमायतम् । ५७ । अण्डाकृति तिरश्चां च द्विजानां च चतुष्पदाम् । तुन्दमध्यं तदिष्टं वै तन्मध्यं नाभिरिष्यते । ५८ । तत्र चक्रं द्वादशारं तेषु विष्णवादिमूर्तयः । अहं तत्र स्थितश्चक्रं भ्रामयामि स्वमायया ।५९। अरेषु भ्रमते जीवः क्रमेण ··· । तन्तुपञ्जरमध्यस्था यथा भ्रमति लूतिका । ६० । प्राणाधिरूढश्चरति जीवस्तेन विना नहि । तस्योर्ध्वे कुण्डली स्थानं नाभेस्तिर्यगथोर्ध्वतः । ६१ । अष्टप्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डली-कृता । यथावद्वायुसारं च ज्वलनादि च नित्यशः । ६२ । परितः कन्द पार्श्वे तु निरुध्यैव सदा स्थिता । मुखेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा । ६३ । योगकालेन मारुता साग्निना बोधिता सती । स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्ज्वला । ६४ । अपानाद्द्व्यंगुलादूर्ध्वमधो मेढ्रस्य तावता । देहमध्यं मनुष्याणां हृन्मध्यं तु चतुष्पदाम् । ६५ । इतरेषां तुन्दमध्ये प्राणापानसमायुताः । चतुष्प्रकारद्व्ययुते देहमध्ये सुषुम्नया । ६६ । (त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्)

हंसहंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ··· । ३२ । ··· अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा । ३३ । अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । अनया सदृशी विद्या अनया

सदृशो जपः । अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति । कुण्डलिन्या समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी । ३५ । प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित् । कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः । ३६ । ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्मद्वारमनामयम् । । ३७ । मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी । प्रबुद्धा वन्हियोगेन मनसा मरुता सह । ३८ । सूचीवद्गात्रमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्नया । उद्घाटयेत्कवाटं तु यथाकुञ्चिकया गृहम् । कुण्डलिन्यां तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् । ३९ । (योगचूड़ामण्योपनिषत्)

कुम्भकः द्विविधः सहितः केवलश्चेति । ··· केवल कुम्भकात्कुण्डलिनी बोधो जायते ।

(शाण्डिल्योपनिषत्)

'अथाआधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं ध्वजाधोगुदोर्ध्वं चतुः शोणपत्रम् ···।१।···।२।···।३।··· ।४। वज्राख्या वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिका मध्यसंस्थं । कोणं तत्त्रैपुराख्यं तड़िदिवविलसत् कोमलं कामरूपम् ... ।५। तन्मध्ये लिंगरूपी द्रुतकनककला कोमलः पश्चिमास्यो । ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकार रूपः स्वयम्भु ।। ··· काशीवासी ··· ।। ६ ।। तस्योर्ध्वे विसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी । ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं साच्छादयन्ती स्वयम् । शंखावर्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा । सुप्ता सर्पसमा शिरोपरिलसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः ।। ७ ।। कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं । वाचः कोमलकाव्यवन्धरचना भेदाति भेदक्रमैः ।। श्वासोच्छ्वासविवर्त्तनेन जगतां जीवो यया धार्य्यते सा । सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दाम-

प्राणियों के शरीर में वन्हि स्थान—देहमध्ये तु कुत्रेति श्रोतुमिच्छसि तच्छृणु । १३ । गुदाद्धि द्वयंगुलादूर्द्धमधो मेढ्राद् द्विरङ्गुलात् । देहमध्यं तयोर्मध्ये मनुष्याणामितिरितम् ॥ १४ ॥ चतुष्पदां तु हृन्मध्ये तिरश्चां तुन्दमध्यगम् । द्विजानां तु वरारोहे तुन्दमध्य इतीरितम् ॥ १५ ॥

जीवस्थान—तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं नाभौ चक्रसमुद्भवः । द्वादशारयुतं चक्रं तेन देहं प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ चक्रेऽस्मिन्भ्रमते जीवः पुण्यपापप्रचोदितः । तन्तुपञ्जरमध्यस्था यथा भ्रमति लूतिका ॥ १९ ॥ जीवस्य मूलचक्रेऽस्मिन्नधः प्राणस्वरादसौ । प्राणरूपो भवेज्जीवः सर्वजीवेषु सर्वदा ॥ २० ॥

कुण्डलीस्थान—तस्योर्ध्वं कुण्डलीस्थानं नाभेस्तिर्यगधोर्ध्वतः । अष्टप्रकृतिरूपा सा त्वष्टधा कुटिलाकृतिः ॥ २१ ॥ यथावद्वायुसंचारं जलान्नादीनि नित्यशः । परितः कन्दपार्श्वेषु निरुध्यैवं सदा स्थिता ॥ २२ ॥ मूलेनैव समावेष्ट्य ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा । योगकाले त्वपानेन प्रचोदयति साग्निना ॥ २३ ॥ स्फुरन्त्या हृदयाकाशान्नागरूपा महोज्ज्वला । वायुर्वायुसखेनैव ततो याति सुषुम्णया ॥ २४ ॥

कुण्डली और उसके द्वारा ग्रन्थि तथा चक्र भेदन--

शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा । मूलकन्दं फणाग्रेण दृष्ट्वा कमलकन्दवत् ।

॥ ८२ ॥ मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमन्विता ··· ॥ ८३ ॥ ··· आकुञ्चनेन तं प्राहुर्मूलबन्धोऽय-मुच्यते । अपानश्चोर्ध्वगो भूत्वा वन्हिना सह गच्छति ॥ ६४ ॥ प्राणस्थानं ततो वन्हिः प्राणापानौ च सत्वरम् । मिलित्वा कुण्डलीं याति प्रसुप्ता कुण्डलाकृतिः ॥ ६५ ॥ तेनाग्निा च संतप्ता पवने-नैव चालिता। प्रसार्य स्वशरीरं तु सुषुम्नावदनान्तरे ।६६। ब्रह्मग्रन्थिं ततोभित्त्वा रजोगुणसमुद्भवम् । सुषुम्नावदने शीघ्रं विद्युल्लेखेव संस्फुरेत् । ६७ । विष्णुग्रन्थिं प्रयात्युच्चैः सत्वरं हृदि संस्थिता । ऊर्ध्वं गच्छति यच्चास्ते रुद्रग्रन्थिं तदुद्भवम् । भ्रुवोर्मध्यं तु संभिद्य याति शीतांशुमण्डलम् ।···॥ प्रकृत्यष्टक रूपं च स्थानं गच्छति कुण्डली । क्रोडीकृत्य शिवं याति क्रोडीकृत्य विलीयते ।७४। ··· जाड्याभाव-विनिर्मुक्तिः कालरूपस्य विभ्रमः । इति तं स्वस्वरूपा मती रज्जुभुजङ्गवत् । ७६ । मृषैवोदेति सकलं मृषैव प्रविलीयते । रौप्यबुद्धिः शुक्तिकायां स्त्रीपुंसौभ्रमतो यथा । ८० । पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्ग-सूत्रात्मनोरपि । स्वापाव्याकृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः । ८१ । ···वायुमूर्ध्वगतं कुर्वन्कुम्भका-विष्टमानसः वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन् । ८४ । ज्वलनाघातपवनाघातो-रुन्निद्रितोऽहिराट् । ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः । ८५ । रुद्रग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट् । सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ॥ ८६ । सैवावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारिणी । इति । (योगकुण्डलिनी उपनिषत्)

मही मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं । स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाऽकाशमुपरि मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि । ६ । सुधाधारा

सारैश्चरण युगलान्तर्विगलितैः। प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा। अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्। स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ।१०। क्षितौ षट् पञ्चाशद् द्विसमधिकपञ्चाशदुदके हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले । दिवि द्वौ षट्-त्रिंशन्मनसि च चतु:षष्टिरिति ये मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥ १४ ॥

नोट-(श्रीमच्छंकराचार्य रचित सौन्दय लहरी के) १४ वें श्लोक का अन्वय और आशय-

हे देवि तव पादाम्बुजयुगम्, तेषाम् अपि मयूखानां उपरि वर्तते इतिशेषः तेषां केषाम् ये मयूखाः क्षितौ षट् पञ्चाशत् ५६ उदके द्विसमधिक पञ्चाशत् ५२ हुताशे द्वाषष्टिः ६२ अनिले चतुरधिक पञ्चाशत् ५४ दिवि द्वौषट्त्रिंशत् ७२ मनसि चतु:षष्टिः ६४ च समुच्चये इति प्रकारे क्रमेच एषामित्यर्थः।

इस श्लोक की व्याख्या सौन्दर्यलहरी के एक प्रकाशक ने इस तरह की है, पृथ्वी में ५६ रश्मि हैं। जल में ५२ यह १०८ रश्मि अग्नि की हैं। अग्नि में ५४ और वायु में ६२ यह ११६ रश्मियां सूर्य की हैं। आकाश में ७२ और मन (चन्द्रमण्डल) में ६४ ये १३६ रश्मियां चन्द्रमा की हैं। रश्मि या प्रकाश तेजतत्व में ही होती हैं। क्षिति आदि पद से रश्मियों के आधार स्वाधिष्ठान आदि चक्र बताये गये हैं।

दूसरी टीका का सार (तन्त्रों के अनुसार)-

आज्ञाचक्र में शिवशक्ति रश्मि नाम आवरण देवता वर्तमान हैं। वहां अर्धनारीश्वर या

आधे दहने अङ्ग में पुंरूप शिव और बांई तरफ स्त्रीरूप शक्ति ज्योति (Rays) वर्तमान हैं। ❀ मूलाधारचक्र-में पार्थिव तत्व २८ बताये गये हैं। यथा- ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ४ अन्तःकरण, ४ काल प्रकृति पुरुष महत्तत्व। इनके द्विगुने ५६ पृथ्वीतत्व होगये। ❀ स्वाधिष्ठानचक्र-में जल तत्व २६, भूत ५, ज्ञानेन्द्रिय ५, कर्मेन्द्रिय ५, विषय १०, मन १, सर्वयोग २६ हुए, पूर्ववत शिव शक्ति भेद से जल तत्व ५२ हुये ❀ मणिपूरचक्र-में ६२ तैजस तत्व हैं। यथा- ५ भूत, ५ तन्मात्र, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय विषय, ५ कर्मेन्द्रिय विषय १ मन कुल ३१ तैजस तत्व हुए। शिव शक्ति भेद से ३१ के दुगुने ६२ तैजस तत्व हुये। ❀ अनाहतचक्र-में वायु तत्व ५४, महत्तत्व को छोड़ के पार्थिव तत्व २७ हुये। शिवशक्ति भेद से कुल ५४ हुए। ❀ विशुद्धचक्र-में आकाशतत्व ७२, यथा शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या अविद्या, माया, केवल विद्या, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहंकार, बुद्धि, मन, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ तन्मात्रायें, ५ भूत सब मिलकर ३६ हुये। पूर्ववत् शिवशक्ति भेद से इनके दुगने ७२ आकाश तत्व हुये। (श्री पं० मुरलीधर रचित, सौन्दर्यलहरी की हिन्दी टीका)

स्वरोदय शास्त्र में ह (सूर्य) और स (चन्द्रमा) से ही सृष्टि की उत्पत्ति आदि बताई गई है और 'ह' में पुरुषतत्व शिव और 'स' में स्त्रीतत्व शक्ति के प्रधान स्थान बताये गये हैं। एक उपनिषत् में प्राण और रयि से भी सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है और प्राण को सूर्य और रयि को चन्द्रमा कहा गया है। ये दोनों तत्व मिथुन हैं अर्थात् एक दूसरे से पृथक नहीं रहते। सूर्य

आग्नेय और चन्द्रमा सौम्य बताये गये हैं। इन्हीं की विपरीत गुणवाली रश्मियों से या शिव के तेज से ब्रह्माण्ड के सब लोक प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्म त्रिविध वपु या शरीर वाला है। इस लिये उनमें रश्मियों के प्रभाव से भिन्न २ तरह की पृथ्वी, जल आदि तत्वों की तन्मात्राओं या रश्मि संज्ञक सूक्ष्म तत्वों के प्रतिबिम्ब भी भिन्न २ वर्ण के होते हैं। इसी लिये शरीरस्थ पञ्चतत्वों और सूर्य चन्द्रमा की मिश्रित वर्ण वाली रश्मियों से सुषुम्नान्तर्गत षट्चक्र दलों और सहस्त्रार संज्ञक पद्म के पत्रों या दलों के रङ्गों में भेद है। ये सूक्ष्म वर्ण स्थूल नेत्रों से नहीं देखे जा सकते। रोगकी दशामें जब इनमें फर्क पड़ता है, तब अशुभ सूचक पञ्चतत्वों की छाया वैद्यों द्वारा जानी जा सकती है (चरक, इन्द्रिय स्थान) चक्रों के वर्ण सिद्ध दिव्यचक्षु योगियों या ऋषियों द्वारा देखे गये हैं। उन्हीं से सम्बन्ध रखने वाले वचन संस्कृत, हिन्दी आदि में दिये गये हैं। चक्र पद्म, संख्या, वर्णादि का सार आगे दिया भी जायगा। तत्वों के वाहन या तत्व बीजाणुओं की गतियों के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है और कुछ बताया भी जायगा।

तडिल्लेखा तन्वीं तपन शशिवैश्वानरमयीम्। निषण्णांषण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्। महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा। महान्तःपश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ॥ २१ ॥
मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि। त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्। त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा। चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे ॥ ३५ ॥

श्लोक ३४ का भाषार्थ—हे शिवपत्नि आपही विश्व कहिए जगत्रूप से आत्मा को परिणाम करने के लिये याने जगत्रूप होने को चिदानन्दाकार को(विभूषे)धारण करती हौ। तुमही मन हौ तुमही आकास हौ तुमही वायु हौ तुमही वन्हि हौ तुमही जल हौ तुमही भूमि हौ। तुम्हारे परिणाम के अनन्तर याने लीला से धारण की गई जो जगद्रूपता ताके पश्चात् अन्य कुछ भी पदार्थ नहीं है यह तात्पर्य्य है। सृष्टिकाल में तुम जगद्रूप होती हौ संहारकाल में चिदानन्द रूप होती हो।

❀ तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं। परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता ॥ यमा- राध्युं भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये। निरालोको लोको निवसति हि भालोकभवने ॥ ३५ ॥ विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं। शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यसनिनीम् ॥ ययोः कान्त्या यान्त्या शशिकिरणसारूप्यसरणिं। विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती ॥ ३६ ॥ समुन्मीलत्सम्वित्कमलमकरन्दैकरसिकं। भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्। यदा- लापादष्टादशगुणित विद्यापरिणति यदाऽऽदत्ते दोषात्गुणमखिलमद्भ्यः पय इव ॥ ३७ ॥ तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय नियतं। त मीडे सम्वर्तं जननि महती तां च समयाम्। यदा लोके लोकान्दहति महति क्रोधकलिते। दयार्द्रा ते दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति ॥ ३८ ॥ ❀

श्लोक ३८ का भाषार्थ—हम सम्वर्तेश्वर नामक शिव व महासमया नाम देवी की स्तुति करते हैं। कैसे शिव हैं तुम्हारा जो स्वाधिष्ठान नाम का दशदल नाभिकमल है तिस्मे हुतवह जो अग्नि

तिसका आश्रय करिके नित्य स्थित है। जिस सम्वर्तेश्वर को आलोक याने नेत्राग्नि जब लोकों को जलाता है तब दया से आर्द्र याने सृष्टि करने की इच्छा से भरी हुई आप की दृष्टि लोकों को शिशिर शीतल उपचार करती है। कैसा सम्वर्तेश्वर का प्रकाश है क्रोधकलिल याने संहारेच्छा के क्रोध से भरा है इसीसे महान है। महती यहां जननी ऐसा पाठ होने में जगत की माता रूप ऐसा अर्थ है। शैवकल्प में नाभिचक्र की स्वाधिष्ठान व लिंगचक्र की मणिपूर ऐसी विपरीत संज्ञा है।३८।

❀ तडित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया। स्फुरन्नानारत्नाभरण परिणद्धेंद्रधनुषम्। तमः श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकरसिकं। निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् ॥ ३६ ॥ ❀

श्लोक ३६ का भाषार्थ-हम शंकराचार्य कोई अनिर्वचनीय जो मेघ याने मेघेश्वर नाम शिव उसकी सेवा करते हैं। कैसा मेघ है शक्ति जो सौदामिनी नाम की शक्ति तिस्से तड़ित्वान् अर्थात् वही शक्ति उक्त मेघ में विजुरी है। पुनः स्फुरत् प्रकाश करते हुये जे नाना वर्ण के रत्न तिनसे परिणद्ध विस्तार को प्राप्त है। इन्द्रधनुष जिसमें पुनः तम जो अन्धकार तिस्के सदृश श्याम है पुनः मणिपूर जो षट्दलकमल सोई है एक मुख्य शरणस्थान जिसका पुनः उक्त सम्वर्तशिव हर-स्वरूप जो मिहिरसूर्य तिस्से तप्त प्रलयकाल में दग्ध जो त्रिभुवन तीनों लोक तिस्को सींचता है याने सुखी करता है जैसा प्रसिद्ध मेघ में विजुरी इन्द्रधनुष श्यामवर्ण आकाशस्थान भूम्यादि सेचन धर्म है तैसे ही इसमें भी है। इन दोनों देव को अमृतेश्वर अमृतेश्वरी भी नाम है उपमा रूपक।३६।

❀ तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया । नवात्मानं वन्दे नवरसमहाताण्डवनटम् । उभाभ्या-मेताभ्यामुभयविधिमुद्दिश्य दयया । सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम् ॥ ४० ॥ ❀

(सौन्दर्य लहरी)

शब्द ब्रह्म (प्रणव ॐ) और कुण्डलिनी सम्बन्ध—

कुण्डली के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये शब्द की उत्पत्ति और प्रणव सृष्टि जानने की आवश्यकता है। यह विषय कठिन अवश्य है। किन्तु वेदों ने सरल बना दिया है। उसका समर्थन नवीन योरोपियन साइन्टिस्ट्स के अनुसंधानों द्वारा हो चुका है। इंगलैण्ड (England) के सर. जे. जीन्स (Sir J, Jeans) द्वारा ग्रीनविच नाम की अवज़रवेटरी (Greenwich Observatory) में, नवीन सितारों के रचना क्रम (Evolution) से वह वैज्ञानिक सिद्ध है। पहले शब्द गुण आकाश (Ether) की उत्पति होती है। उसी में विश्वव्यापी शब्द तरंग और ज्योति या रश्मियों (light) की गति संभव (as shown by Einstein) होती है।

बीजाक्षर (ॐ, ओम्) से परे विन्दु होता है, बिन्दु के परे नाद स्थित है। मकार के क्षीण होने पर पद्म है। उपनिषदों में आत्मा से या इस (आत्म-शक्ति) से आकाश या नाद की उत्पत्ति और क्रमशः वायु अग्नि आदि की उत्पत्ति बताई गई है। सांख्य शास्त्र के अनुसार प्रकृति से पहले महान और महान से त्रिगुणात्मक अहं आदि की सृष्टि बताई गई है। वेद में प्रकृति

को माया कहा है। और वैशेषिक दर्शन में उसी को सत, कारण रहित, नित्य अणु बताया है। योगदर्शन में चिति (कैवल्यपद या स्वस्वरूप में स्थिति) को पुरुषाख्या कहा है। सांख्य में चित् को भोगों की हद (अवसान या लय) का स्थान बताया है। इसी तरह बीजाक्षर (प्रणव) के मकाराक्षर का लय स्थान अस्वर या निः शब्द परं पद बताया है।

तन्त्रों में सकल (प्रकृति सहित) विभु सच्चिदानन्द परमेश्वर से शक्ति की उत्पत्ति बताई गई है। उसी से नाद और नाद से विन्दु की उत्पत्ति कही गई है। सनातन नित्य ब्रह्म सगुण और निगु ण भी माना जाता है। नित्य निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वगत्, सदानन्द, विकार रहित साक्षी सनातन शिव (परमेश्वर) समझे जाते हैं। इनका स्थान हृदय है। ये ज्ञानात्मक परं ब्रह्म स्वयं वेद्य हैं। बुद्धि से परे सत्य निष्कल और निर्मल है। वेदों में चैतन्य को ही शुद्ध बुद्ध मुक्त बताया है। वही त्र्यम्बक हैं। सगुण शिव या शक्तिभूत सर्वेश ब्रह्मादि मूर्तियों से भिन्न है। वही कर्त्ता भोक्ता और संहर्त्ता जगन्मय और सकल परमेश्वर है। शिव इच्छासे पराशक्ति तथा शिवतत्त्व के संयोग पश्चात्, जैसे तिल से तेल निकलता है, उसी तरह शक्ति का आदि में आविर्भाव हुआ। शक्ति से नाद हुआ। स्फुरण कालीन निरामय पदोन्मुखी नादात्मना प्रबुद्धा शक्ति पुंरूपा होती है। उसी पुं-शक्ति का घनीभाव क्रियाप्रधान विन्दु है। वह चिन्मात्र शक्ति—तत्त्व ज्योति के सामीप्यता (सन्निधि से) घनीभूत होकर कभी विन्दुता को प्राप्त होती है। वह अभिव्यक्त अखण्ड व्याप्त चिद्रूपिणी, विभू समस्ततत्व भावों तथा विवर्त्तेच्छा समन्वित पराशक्ति क्रिया-

प्राधान्य लक्षण विन्दु में परिणित हो जाती है। अतः बिन्दु शिवशक्त्युभयात्मक है। क्षोभ्य-क्षोभक-सम्बन्ध रूप से त्रिविध हैं। शिवात्मक विन्दु और शक्त्यात्मक बीज के संयोग से नाद-संज्ञक तत्व होता है। इनके योग से तीन शक्तियां उत्पन्न हुई। अर्थात् उन्हीं से क्रमशः रुद्र ब्रह्म रमाधिप उत्पन्न हुये। वे यथा क्रम इच्छा, क्रिया और ज्ञानशक्ति स्वरूपा हैं। अतः वन्हि इन्दुः अर्क स्वरूपी अर्द्धेन्दु-विन्दु-रूप शक्ति के ही अवस्था विशेष हैं (इच्छा-क्रिया-ज्ञानात्मत्व की उत्पत्ति शक्ति में होने से) शक्त्यावस्था रूप प्रथम विन्दु वर्णादि विशेष रहित अखण्ड नादमात्र उत्पन्न होता है। विन्दुरूपिणी प्रकृति से परम्शब्दब्रह्म उत्पन्न हुआ।

प्रणवांश या मात्रा का विद्यु त (विजली) से सम्बन्ध– (निम्न वचनों से स्पष्ट है)

ओमित्ये दक्षरस्यपादाश्चत्वारो ··· रुचिरा भास्वती स्वभा। प्रथमा रक्ता ब्राह्मी ···। द्वितीया शुभा रौद्री ···। तृतीया कृष्णा विष्णुमती ···। चतुर्थी विद्युन्मती सर्ववर्णा पुरुष देवत्या स एष ह्योङ्कारः (अथर्व-शिखोपनित्) "हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रोमात्रा परस्तु सः। ··· स ओङ्कारः। ··· स प्रणवः। ···तारं ··· सूक्ष्मं ···वैद्युतं ··· परं ब्रह्म ··· रुद्रः ··· भगवान महेश्वरः ॥ ३ ॥ अथ ··· यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणान् ऊर्द्धमुत्क्रामयति तस्मात् ओङ्कारः। ··· यस्मादुच्चार्यमाण गर्भ-जन्म-व्याधि-जरा-मरण-संसार-महाभयात् तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम्।··· एव सूक्ष्मो भूत्वा शरीरण्यधितिष्ठति ··· तस्मादुच्यते सूक्ष्मम्। ··· यस्मादुच्चार्यमाण एव व्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम्। (शिर उपनिषत्) ।

प्रणवः सर्वदा तिष्ठेत्सर्वजीवेषु भोगतः। अभिरामस्तुसर्वासु ह्यवस्थासु ह्यधोमुखः ॥ ७३ ॥ अकार उकारो मकारश्चेति त्रयोवर्णास्त्रयोवेदास्त्रयो लोकास्त्रयो गुणास्त्रीण्यक्षराणित्रयः स्वरा एवं प्रणवः प्रकाशते। ...। ज्ञानिनामूर्ध्वगो भूयादज्ञाने स्यादधोमुखः ॥ ७८ ॥ ... एवं वै प्रणवस्तिष्ठेत् ... अनाहत स्वरूपेण ज्ञानिनामूर्ध्वगोभवेत् ॥ ७९ ॥ ... भूभु वः स्वरिमेलोकाः सोमसूर्याग्नि देवताः। यस्यमात्रा सु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ८५ ॥ क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी। त्रिधामात्रास्थितिर्यत्र तत्परं ज्योति रोमिति ॥ ८६ ॥ (योगचूड़ामणिउपनिषत्)

बीजाक्षरात्परं बिन्दुं नादं बिन्दोः परे स्थितम्। सु शब्दश्चाक्षरे क्षीणे निः शब्दं परमं पदम्।

(ध्यानबिन्दूपनिषत्)

शरीर में कुण्डलिनी का स्वरूप, उत्पत्ति, स्थानादि का संक्षिप्त वर्णन—

योग शास्त्र में, जैसा अनेक वचनों से समझाने का प्रयत्न किया गया है, ब्रह्माण्ड या लोक और पिण्ड या पुरुष समान गुणवाले बताये गये हैं। इस लोक के पिण्डों (प्राणियों के शरीरों) में वन्हि जीव और कुण्डलिनी के विशेष स्थान हैं। कुण्डलिनी ही मूलाधार पद्म के त्रिकोण में जीव शक्ति या आत्मशक्ति रूप से स्थित है। उसी शक्ति से जीव प्राणकर्म (Respiratory acts) या स्वासोच्छ्वास कर्म करने और प्राणवाही नाड़ियों में भ्रमण करने में समर्थ होता है। मेरुपृष्ठ में १६ कलायुक्त चन्द्रमा है। उस चन्द्रमा मण्डल से रात दिन तुषार (अमृत) की धारा

नीचे की तरफ वर्षा रूप से जारी रहती है। चन्द्रमा से अमृत बरसता है। सूर्य हमेशा उसका शोषण करते रहते हैं, उनके संयोग से ही प्राण रहते हैं। वियोग से मृत्यु होती है। प्राण चन्द्रमा-मय और अपान सूर्यमय हैं। शब्दब्रह्म या प्रणव ही भोगरूप से सब भूतों में चैतन्य है।

❀ कुलकुण्डली ❀ सार्द्धत्रितय विन्दु से उत्पन्न होती है। अर्थात् त्रिधा शक्ति ब्रह्मविष्णु-रुद्रादि देवता या प्रणव के अकार, उकार, मकाराक्षर तीन मात्राओं और नाद विन्दु (अर्धमात्रा) से ही हुई है। अतः वह प्रणवाकार शब्दब्रह्म चैतन्य और पराशक्ति है।

❀ कुलकुण्डली की उत्पत्ति ❀ वह प्रणव के अकार, उकार मकार अक्षरों, त्रिविध विन्दु या ब्रह्मा–विष्णु–रुद्र स्वरूप शक्तियों और शिवशक्तिमय नादविन्दु (अर्धमात्रा) से होती है। इस लिये साढ़े तीन विन्दुओं से कुण्डलिनी भुजङ्गी की उत्पत्ति बतायी गई है। इसके समर्थक वचन बंगाल के प्रसिद्ध पं० कुलपति बी० ए० श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा प्रकाशित प्राणतोषिणी से इसी लेख के पृष्ठ ८३ पर उद्धृत हैं। (नादरूपा महेशानि से कुलकुण्डली तक देखिये)

❀ शब्दब्रह्म कुण्डलिनी से पञ्चाशत् वर्णोत्पत्ति ❀ परानाम शब्दावस्था शब्दब्रह्म (ॐ) ही है। वही चैतन्यरूपा कुण्डलिनी शक्ति है। वही पश्यन्तादि रूप से वेद राशि हो जाती है। अर्थात् वैखरी संज्ञक वाणी श्रोत्र ग्राह्य है, जिसमें मनुष्य भाषण करते हैं। कुण्डलिनी के मध्य में मात्रास्वरूपिणी सूक्ष्म ज्योति बताई गई है। वह अश्रोत्र या श्रवणातीत विषय है। वह ऊर्द्ध-गामिनी होती है। स्वयं प्रकाशा सुषुम्नाश्रिता वाणी पश्यन्ती होती है। वही हृदय में प्राप्त होकर

नादरूपिणी मध्यमा कहाती है। वही उर, कण्ठ, तालु, शिर, घ्राण, उदर स्थित, जिह्वामूलोष्ठ, निश्वास, रूप, वर्ण परिग्राह्या, ज्योति, शब्दप्रपञ्च जननी श्रोत्रग्राह्या वैखरी वाणी में परिणित हो जाती है। उसी से मन, वन्हि, वायु, हंस आदि की उत्पत्ति होती है। वह मन्द मन्द स्वर करती है। जीवों के स्वास २ में जो हंस हंस शब्द होते रहते हैं, वे सगुणशक्ति या ईश्वर के ही शब्द हैं। अर्थात् वे शरीर के मूलाधार में स्थित ब्रह्मस्वरूपिणी कुण्डलिनी के मुख से ही निकलते रहते हैं। उन्हीं को अजपाजप या प्राणधारिणी गायत्री भी कहते हैं। उसके बिना प्राणी न सांस ले सकते हैं, न सब प्राणवाही नाड़ियों (इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्नादि) में भ्रमण कर सकते हैं और न जी सकते हैं। वह चैतन्यस्वरूपिणी पराशक्ति श्रीमच्छंकराचार्य के सौन्दर्य लहरी में अनेक आवरणात्मक देवताओं या रश्मियों (lightning-like luminous layers of Kundalini or Chaitanya shakti called by foreigners as Serpent Fire or Power) से आवृत बताई गई है। चैतन्य पराशक्ति स्वरूपा कुण्डलिनी अगोचर है। इनके समर्थक वचन इसी पुस्तक के ८० से ८४ पृष्ठों पर और सौन्दर्य लहरी से उद्धृत किये गये हैं।

❀ कुण्डलिनी के अनेक नामों के उदाहरण ❀ कुमारी, कुण्डलिनी, देवी, भुजङ्गी, शक्ति, ईश्वरी, परमेश्वरी, अरुंधती, ज्ञानशक्तिगृह, ज्ञानस्वरूपिणी, अष्टधाकुण्डलीभूता, कुण्डलिनी नाम पराशक्ति, प्राणाकारा, प्रणवाकार, तैजसी, हिरण्मयी, बिसतन्तुनिभाशुभ्रा, तड़िल्लेखातन्वी, भुजगाकारा, बालरण्डा, तपस्विनी, कुण्डलीपरदेवता, जीवशक्ति, आत्मशक्ति, कूजन्ती, शब्दप्रपञ्च-

जननी, षटचक्रभेदनी, ज्ञानरूपा महोज्ज्वला। सती, गुणत्रय प्रसूतिका, चतुर्दशप्राणवाही नाड़ियों का आश्रय, मन, वन्हि, हंस आदि की उत्पादक। इनसे सम्बन्ध रखने वाले अनेक वचन पूर्व में उद्धृत किये जा चुके हैं।

❀ कुण्डली नाम का कारण ❀ क्योंकि वह सर्प या नागिन की तरह कुण्डलाकार (योगियों द्वारा देखी गई) रूप से सुषुम्ना के अधोमुख पर स्थित स्वयम्भूलिङ्ग पर लिपटी है।

❀ कुण्डली का स्थान ❀ देह मध्य में स्थित सुषुम्नान्तर्गत मूलाधार चतुर्दलपद्म के त्रिकोण में पश्चिमाभिमुखी योनि है। वही उसका स्थान अनेक ग्रन्थों में बताया गया है। वह सर्पाकार कुण्डली सुषुम्ना के मुख में स्थित स्वयम्भूलिङ्ग को दक्षिणावर्ती (दहनी ओर घूमने वाले पेंच की तरह) साढ़े तीन लपेटों से लपेट कर सो रही है। उसका सोना केवल इतना ही है कि वह अपने मुह (फन) को स्वयम्भू लिङ्गछिद्र से हटा कर और सीधा ही करके सुषुम्ना में ऊपर की ओर नहीं प्रवेश कर सकी। जागृत होने पर ही वह ऐसा करती है।

❀ कुण्डलिनी ध्यान ❀

इति सर्वं गुरवे निवेद्य मनसा गुरोराज्ञां गृहीत्वा मूलाधारकर्णिकान्तस्थत्रिकोणान्तर्गताधोमुखस्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीं प्रसुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयां विद्युत्पुञ्जप्रभां नीवारशूकवत्तन्वीं कुलकुण्डलिनीं निजेष्टदेवतारूपां हूङ्कारेण मनुना हंस इति मनुना वा त्रिकोणमण्डलाग्निना पवन-दहनयोगाच्चैतन्यं विधाय ब्रह्मवर्त्मना सहस्रारं नीत्वा तत्रस्थपरशिवे संयोज्य तयोः सामञ्जस्यं

विभाव्यात्यन्तं श्यामारहस्योक्तम् । तत्प्रमाणं तद्धृतकालिकाश्रुतिर्यथा । मूलाधारे स्मरेन्नित्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम् । तस्याग्निरेखामानीय अध ऊर्द्ध व्यवस्थिताम् । नीलतोयदमध्यस्थतड़िल्लेखेव भास्वराम् । नीवारशूकवत्तन्वीं पीतां भास्वदनुपमाम् । नीवारशूकवदिति उड़िधान्यसुङ्गा इति प्रसिद्धिः । तस्याः शिखायां मध्ये च परमोर्द्ध व्यवस्थिताम् । स ब्रह्मा स शिवः सूर्यः शङ्करः परमस्वराट् । स एव विष्णुः स प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमाः । इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

(प्राणतोषिणी)

अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत । ऊरूस्थोत्तान चरणः सव्ये चोरौतथोत्तरम् ।३४। उत्तानं किंचिदुत्तानं मुखमवष्टभ्यचोरसा निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दंतैर्दंतान्नसंस्पृशेत ।। ३५ ।। तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः । संनिरुद्धेन्द्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः ।। ३६ ।। द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत् । ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः ।। ३७ । धारयेतत्रचात्मानं धारणां धारयेद्बुधः । सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः ।। ३८ ।। सलक्ष्यश्चाप्यलक्षश्च प्राणायामास्तु षड्विधः ।। प्राणायामसमोयोगः प्राणायाम इतीरितः ।। ३९ ।। प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भकैः । वर्णत्रयात्मकाह्येते रेचकपूरककुम्भकाः ।। ४० ।। स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः । इड़या वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम् ।। ४१ ।। शनैः षोड़शमात्राभिन्ययातं विरेचयेत् । एवं सधूमः प्राणायामः कथितो मुने ।। ४२ ।। आधारे लिङ्गनाभिप्रकटित हृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोड़शारे द्विदश दश दल द्वादशार्धेचतुष्के । वासांते बालमध्ये डफ कठ

सहिते कंठदेशे स्वराणां हं त्वं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥ ४२ ॥ अरुणकमल-संस्था तद्रजः पुञ्जवर्णा हरनियमितचिन्हा पद्मतन्तुस्वरूपा रविहुतवहराका नायकास्यस्तनाढ्या सकृदपियदिचित्ते संवसेत्स्यात्समुक्तः ॥ ४४ ॥ स्थितिः सैवा गतिर्यात्रा मतिश्चिंता स्तुतिर्वचः । अहं सर्वात्मको देव स्तुतिः सर्वत्वदर्चनम् ॥ ४५ ॥ अहं देवी ना चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् । सच्चिदानन्द रूपो ऽस्त्वात्मानमितिर्चिंतयेत् ॥ ४६ ॥ प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे प्रति प्रयाणेप्यमृतायमानाम् । अतः पदव्यामनुसंचरंतीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ ततो निज ब्रह्मरन्ध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम् । उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तं यथाविधि ॥ ४८ ॥ स्तुवीतानेन मंत्रेण साधको नियतात्मवान् । गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुरेव परब्रह्मतस्मैश्रीगुरवेनमः । ४९ ।

(इति श्रीदेवीभागवत् एकादश स्कन्धे प्रातश्चिंतनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

❀ कुण्डलिनी स्त्रोत्र ❀ ओं नमस्ते देवदेवेशि ! योगीशप्राणबल्लभे ! सिद्धिदे ! वरदे ! मातः ! स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिते ॥ १ ॥ ओं प्रसुप्त भुजगाकारे ! सर्वदा कारणप्रिये ! । कामकलान्विते ! देवि ! ममाभीष्टं कुरुष्व च ॥ २ ॥ असारे घोरसंसारे भवरोगात् कुलेश्वरि ! । सर्वदा रक्ष मां देवि ! जन्मसंसारसागरात् ॥ ३ ॥ इति कुण्डलिनी स्त्रोत्रं ध्यात्वा यः प्रपठेत् सुधीः मुच्यते सर्वपापेभ्यो भवसंसाररूपके ॥ (प्राणतोषिणी से योगसार तृतीय पटल)

❀ चौर गणेशमन्त्र का दश द्वारों में न्यास ❀ तत आचारात् स्वेष्टदेवताप्रणाममन्त्रेण कुण्डलिनीं नत्वा दशसु द्वारेषु चौरगणेशमन्त्रं कवाटवन् न्यसेत् तदुक्तं गणेशविमर्षिण्याम् ।

चक्षुर्द्वयं तथा कर्णद्वयं नासापुटद्वयम् । मुखं नाभिं लिङ्गमूलं गुदस्थानं तथैव च । मनोद्वारं भ्रुवोर्मध्ये दशैव द्वारसंज्ञिताः अङ्कुशं प्रथमं वीजं हृदये दशधा जपेत् । प्रजापान्ते ततो मातः ! कवाटं निक्षिपेत्ततः । कर्णयोश्च तथा कूर्चं कालीं नासापुटे ततः । मुखे स्त्रीं द्विविधं वीजं नाभौ वाणीं ततो जपेत् । हसौः वीजं लिङ्गमूले क्लुं मूले परिकीर्त्तितम् । ॐ कारञ्च भ्रुवोर्मध्ये मनःस्थाने तथैव च । एतदेकादशं वीजं प्रतिद्वारे कवाटवत् । (प्राणतोषिणी)

अथप्रयोगः ॥ हृदि क्रोमिति दशधा जपेत् दक्षिणचक्षुषि ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ वामचक्षुषि ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ दक्षकर्णे ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ दक्षिणनासायां हुं हुं इति ॥ १० ॥ वामनासायां हुं हुं इति ॥ १० ॥ मुखे ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ नाभौ ऐं लीमिति ॥ १० ॥ लिङ्गे हौः इति ॥ १० ॥ गुह्ये क्लुमिति ॥ १० ॥ भ्रूमध्ये हूमिति ॥ १० ॥ सर्वत्र दशधा जपेत् ।

❀ अजपा जप समर्पण विधि ❀ कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकायां तृतीयकाण्डे अस्याजपागायत्रीमन्त्रस्य शिरसि हंस ऋषये नमः ॥ मुखे अव्यक्तगायत्रीच्छन्दसे नमः । हृदि परमहंसदेवतायै नमः । लिङ्गे हं बीजाय नमः । आधारे सः शक्तये नमः । परमात्मप्रीतये उच्छ्वासनिश्वासाभ्यां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रजपेन पूर्वभूतेभ्यो निवेदयामि । मूलाधारमण्डपे स्वर्णवर्णचतुर्दलपद्मे वादिसान्तचतुर्वर्णान्विते गायत्रीसहिताय गणनाथाय षट्शतसंख्यजपमहर्निशं समर्पयामि नमः । स्वाधिष्ठानमण्डपे अनेकविद्युन्निभे वादिलान्तषड्वर्णान्विते षड्दलपद्मे सावित्रीसहिताय ब्रह्मणे अजपामन्त्रषट्सहस्रं निवेदयामि नमः । मणिपूरमण्डपे नीलोत्पलमेघनिभे डादिफान्तदश-

वर्णान्विते दशदलपद्मे लक्ष्मीसहिताय विष्णवे षट्सहस्रजपं समर्पयामि नमः। अनाहतमण्डपे तरुणार्कसन्निभे द्वादशवर्णयुते द्वादशदलपद्मे गौरीसहिताय शिवाय अजपाषट्सहस्रजपं समर्पयामि नमः। विशुद्धमण्डपे षोडशदलकर्णिकामध्ये जीवात्मने अकारादि अःकारान्ते अजपासहस्रसंख्य-जपं निवेदयामि नमः। आज्ञामण्डपे श्री चन्द्रप्रभे द्विदलपद्मे हक्षवर्णान्विते माया सहितगुरुमूर्त्तये एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः। ब्रह्मरन्ध्रमण्डपे नानावर्णोज्ज्वले सहस्रशब्दोऽसंख्यपर इति बोध्यम्। उक्तञ्च पद्मं कोटिसमन्वितमिति सहस्रपद्मस्थिताय परमात्मने अकारादिक्षकारान्त-सहिताय एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः। इति जपं समर्प्य अष्टोत्तरशतसंख्यमजपाजपं कुर्य्यात्।

(प्राणतोषिणी)

❀ कुण्डलिनी के दृष्ट और अदृष्टांश ❀ कुण्डलिनी के जो अनेक नाम दिये हैं, उनसे स्पष्ट है, कि जो सगुणशक्ति सर्पाकार रूप से सुषुम्ना के मुख में लग्न सूक्ष्म मूलाधार पद्म में स्वयम्भूलिङ्ग पर साढ़े तीन लपेटे लगाकर बिजली और तपाये सोने की तरह चमकती योगियों के ध्यान द्वारा देखी जाती है, वह ज्योतिर्मय ॐकार स्वरूप जीवभूता, पराशक्ति, जीवशक्ति, आत्मशक्ति या शब्दब्रह्म नहीं है, किन्तु आवरणात्मक (परदे की तरह उसे ढांकने वाले) अनेक देवताओं (चमकती रश्मियों) और दीपवत् प्रकाशमान प्राण और अपान संज्ञक पवनों से आवृत विद्युतपुञ्जप्रभायुक्त, मन, वायु, वन्हि, हंस, नाद, या शब्द प्रपञ्चजननी, सत्वरजतमगुणत्रय प्रसूतिका ब्रह्मस्वरूपिणी अष्टधाप्रकृति स्वरूपा कुण्डलिनी सिद्ध योगियों द्वारा देखी जा सकती है।

उसका स्थान आगे बताया जा चुका है। मूलाधार में स्थित प्रकाशमान त्रिकोण में कुण्डलिनी, शशिप्रभा इड़ा (गंगा), सूर्यप्रभा पिंगला (यमुना) और इन्द्र–अर्क–वन्हि प्रभा सुषुम्ना (शब्दगर्भा सरस्वती) नाड़ियों के सन्धि स्थान को भी स्वयम्भूलिङ्गवत लपेटे हुए सुषुम्ना के मुख को बन्द रखती है। सुषुम्ना (ब्रह्मनाड़ी) विवर, मूलाधार से सहस्रार पद्म में ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त, फैला है। घण्टे २ पीछे दहने (सूर्य) और बांये (चन्द्र) नथने से स्वर बदल २ कर उदय होकर चलते रहते हैं। थोड़े पलों के लिये सुषुम्नास्वर या दोनों नथनों के भीतर स्वर चलते मालूम पड़ते हैं। यह सुषुम्नास्वर और सन्धिकाल (जैसे सूर्योदय तथा सूर्यास्त समय) भी कहाता है। इस समय जीव प्राण इन इड़ा पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के सन्धि स्थानों पर रहता है अर्थात् जीवप्राण और शंभुरूप सुषुम्नार्तगत प्राण एक दूसरे के सन्मुख रहते हैं। अतः प्राणायाम ध्यानादि के लिये यह उत्तम काल है। कुण्डलिनी को भस्त्राख्य प्राणायाम, कुम्भकादि द्वारा अपान वायु चित्त और तप्तलोहशलाका या सूचीवत् विद्युत रेखावत सूक्ष्मकुण्डलिनी का सुषुम्ना विवर में प्रवेश (ध्यान द्वारा ऊपर की ओर चढ़ाना) अधिक सरल है। किन्तु इस कठिन (खतरनाक) कार्य को केवल पुस्तक ज्ञान के आधार पर कभी नहीं करना चाहिये।

❀ षटचक्र के दलों (Petals) या पत्रों के और उन पर स्थित पञ्चाशत वर्णों (letters) के रंग या वर्ण में भेद ❀ योगियों ने इन चक्रदलों और वर्णों के रङ्ग भिन्न २ प्रकार के बताये हैं। आयुर्वेद के आधार पर मैंने पञ्चतत्वों की विकृत छाया (shadow or radiations

in disease) का संकेत किया है। स्वरोदयशास्त्र के ज्ञाता योगियों ने पञ्चतत्वों के पीले, सफेद, लाल, मेघवत् नील, धूम्रवर्ण, सर्व या अव्यक्तवर्ण बताये हैं। इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियों में चन्द्रमा, सूय और अग्नि का प्रकाश रहता है। सरस्वती में शिवशक्ति से उत्पन्न नाद से ही त्रिविध शक्तियां(ब्रह्मविष्णुशिवात्मक)या इच्छाज्ञान क्रियात्मक कार्य-लक्षण बिन्दु उत्पन्न होते हैं। सतोगुण प्रकाशशील रजोगुण क्रियाशील और तमोगुण स्थितिशील है। त्रिविन्दु ज्योतिर्मय होते हैं। इनमें हकार-रूप शिव और सकार-रूप शक्ति या सूर्य तथा चन्द्रमा की प्रभा का योग रहता है। भू, भुव, स्व, महः, जन, तथा तपलोकाख्य षटचक्रों के देवताओं के और पञ्च-तत्वों के वर्णों में भेद होने और सुषुम्ना में सोम सूर्याग्नि प्रभायुक्त प्रधान तीन नाड़ियों के प्रकाश में भी भेद के कारण सुषुम्नाश्रिता त्रिन्दुरूपिणी अश्रोत्रविषया पञ्चाशतवर्णरूप वाग्देवी स्वयं प्रकाशमान या पश्यन्ती कहाती है। वही सुषुम्नाकंद में व्यक्त होकर भिन्न २ चक्रों में ज्योतिर्मय कार्यलक्षण पञ्चाशत वर्ण रूप विन्दु ही दल रूप से प्रगट होते हैं। प्रत्येक वर्ण रूप देवी सार्द्धत्रिविधविन्दु या शक्तिमय प्रणवाकार कुण्डलिनी ही वर्ण या दल रूप से प्रकाशित होती है। योगियो को दल रूप से दिखाई देती है। त्रिबज्र ॐकार जब भ्रुवोर्मुखी होता है वत जहां व्यञ्जनात्मक मकार स्वर निःशब्द होता है, वहीं स्थान अर्धविन्दुस्वररूपिणी शक्ति का होता है। व्यञ्जनात्मक पश्यन्तीसंज्ञक वाक् कुण्डलिनी के मध्य में ज्योतिर्मात्रा रूप से प्राप्त हो, ऊर्द्धगामी होकर हृदय में संकल्पमात्रा वाणी मध्यमा है। कंठ में स्वर शक्ति युक्त वाणी वैखरी कहाती है।

उर्दू भाषा के जानने वाले सन्तों द्वारा चक्रों का वर्णन—

आकाशादि पांच भूतों से बने शरीर को क़िला और पांच भूतों को पांच शहरपनाह बताया है। नाड़ियों को कोठलियां माना है। शरीर के चक्रों के नाम महल रक्खे हैं। सातवें महल पर बादशाहों के बादशाह (ज्योतिस्वरूप परब्रह्म) निवास करता है। गढ़ के उस मकान पर जिसमें महाराज स्वयं बैठता है एक झण्डी लगा दी जाती है। उसी प्रकार इस शरीर रूपी गढ़ में जहां ब्रह्म गुप्तरूप से निवास करता है शिखा रूपी झण्डी लगा दी गई है। अर्थात् शिखा ब्रह्म-रन्ध्र के स्थान को बताती है। इसी कारण सनातन धर्म के आचार्यों ने शिखा रखवा कर गायत्री मन्त्र से संध्या के समय शिखा बन्धन या स्पर्श की प्रणाली निकाली है, जिससे चित्तवृत्ति या ध्यान ब्रह्मरन्ध्र के समीप ब्रह्म की तरफ लगा रहे।

सातमहल (मन्जिले) = सातों पद्म–१. पहले महल के चार द्वार हैं अर्थात् चतुर्दलपद्म (आधारचक्र), २. दूसरे के ६ द्वार हैं ··· षटदल पद्म (मणिपूरक चक्र) ३. तीसरे के दश द्वार हैं ··· दशदलपद्म (स्वाधिष्ठान चक्र), ४. चौथे के द्वादश द्वार ··· द्वादशदल पद्म (अनाहत चक्र) ५. पांचवें षोड़श द्वार हैं। षोड़शदलपद्म(विशुद्धाख्य चक्र)६. छठवें में दो छोटी२ खिड़कियां ··· द्विदलपद्म (आज्ञाचक्र) खिड़कियों की सन्धि स्थान (त्रिकुटीमहल) पर एक इतराख्यलिङ्ग है ७. सातवें महल के हजार द्वार (सहस्रदल पद्म) हैं। (श्रीस्वामी हंसस्वरूप)

प्राणायाम—

इस लेख के प्रारम्भ में बताया गया है, कि षटचक्रों का घनिष्ट सम्बन्ध योगाभ्यास से है। प्राणायाम योग का मुख्य अङ्ग है। युक्त प्राणायाम से अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। अयुक्त प्राणायाम से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास करनेवालों को शास्त्र में दिये यम नियमादि का पालन, योगवृद्धिकर आहार विहार आदि का सेवन और योगविघ्नकर विषयों के त्याग भी आवश्यक बताये गये हैं।

यम नियमादि—

यम—अहिंसा (सर्वथा, सर्वदा, सब भूतों पर दया या उनको दुःख न देना)। अस्तेय (अशास्त्र पूर्वक दूसरों के द्रव्यों को स्वीकार करने या चोरी का निषेध)। ब्रह्मचर्य (वीर्य्यरक्षा—अष्टविध ब्रह्मचर्य का पालन)। अपरिग्रह (विषयों का अस्वीकरण)। सत्य (सर्वभूत हित सत्य बोलना)।

नियम—शौचं (शरीर और मन के मैलों का प्रक्षालन। साबुन मृत्तिका आदि से शरीर तथा वस्त्रादि की सफाई। मन की शुद्धि रागद्वेषादि के त्याग से, सात्विक व्यवहार से)। संतोष—(प्राणयात्रा के लिये आवश्यकतोचित् शास्त्रानुसार धनोपार्जन केपश्चात् अधिक की इच्छा न करना, न अनुचित यत्न करना)। तप (द्वन्द्वों—यथा शीत उष्ण का सहन, भूख

प्यास का सहना, कठिन व्रतादि का करना)। स्वाध्याय (मोक्षशास्त्रों का अध्यन, प्रणव या ॐ कार तथा अपने इष्टदेव का नाम जप स्मरण आदि)। ईश्वर प्रणिधान (स्वाध्याय और जप आदि को अपने परम गुरू ईश्वर को समर्पण करना)। देव द्विज गुरु प्राज्ञ का पूजन, शौच आर्जव, ब्रह्मचर्य्य, अहिंसा आदि शारीर तप कहाते हैं। दश यमनियमादि :—

यथा–"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चैव यमा दश॥"

"तपः संतोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्। सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपोव्रतम्॥"

योगाभ्यास में युक्त और अयुक्त आहार विहारादि—

योगवृद्धिकर आहार विहारादि, यथा—क्षीर, घृत, मक्खन, दूध की मलाई, नवनीत मिष्ठान्न, मिताहार, गोधूम (गेहूं), चावल, जौ, सोंठ का प्रयोग, दिव्य शुद्ध जल (जैसे गंगाजल) यम नियमादि का पालन।

योग विघ्नकर या त्याज्य आहारादि. यथा—कटु, तिक्त, अम्ल, लवण, उष्ण, रूक्ष, वासी गरम किया अन्न, लशुन. हींग, मांस, दही, तेल, सौवीर (खट्टा माड़) अग्निसेवन, स्त्रीसङ्ग; अतिआहार, प्रवास, लौल्य, प्रजल्प (बकबास), धूर्तगोष्ठी, जनसङ्ग। योगकुण्डल्युपनिषत् में बताये अन्य विघ्न–दिन में सोना, रात में जागना, अति मैथुन, मूत्र पुरीष का रोकना, विषम-अशन, आलस्य, संशय, निद्रा, विरति, भ्रान्ति आदि।

प्राणायाम से लाभ—

प्राण के प्रच्छर्दन (वमन या रेचन) से और विधारणा (स्तम्भन) से चित्त एकाग्र होता है।

इसके नित्य अभ्यास से इन्द्रियकृत दोषों का नाश और प्राणवाही नाड़ियों तथा रक्त का शोधन। यह शरीर धातुओं का साम्यकर (Preserves equilibrium of living matter of cells), नेत्रों की ज्योति को बनाये रखता है और जठराग्नि को बढ़ाता है। शरीर को हलका रखता है। इससे प्राण वायु और चित्त वश में हो जाते हैं। शनैः २ चित्त संयम (धारणा ध्यान समाधि की एकतानता) शक्ति उत्पन्न होती है। पातञ्जल योगदर्शन में कठिन विषयों का चित्त-संयम से साक्षात्कार—यथा नाभिचक्र में संयम से कायव्यूह का ज्ञान, सूर्यचक्र में संयम से भुवन ज्ञान चन्द्रमा के संयम से ताराव्यूह या रचना ज्ञान, योगी द्वारा नाद में मन लय करने से दूरश्रवणशक्ति, विन्दु में मन को लय करने से दूरदृष्टि, पृथिवी में चित्त धारणा से पातालगमन शक्ति, सलिल (जल) में चित्त धारणा से जल से भय नहीं रहता, अग्नि में धारणा से अग्नि से योगी जल नही सक्ता। वायु में मन के लय से आकाशगमन शक्ति। इसी तरह विष्णु या रुद्ररूप आत्मा की भावना से पालन संहार शक्तिवाला होता है। (योगशिखोपनिषत्)

प्राणायाम और प्राणायाम के भेद—

नाक के नथने के भीतर प्रवेश करनेवाली सांस को श्वास और बाहर निकलनेवाली सांस को प्रश्वास कहते हैं। इन दोनों के गति विच्छेद या अभाव को पातञ्जल योगदर्शन में प्राणायाम कहा है। श्वास और प्रश्वास प्राणायाम के पूरक और रेचक भेद कहाते हैं। पूरक और रेचक प्राणायाम के अभाव को कुम्भक कहते हैं। पूरक और रेचक सहित प्राणायाम सहित कुम्भक है। इन दोनों को त्याग कर सुख मे वायु धारण ही केवल कुम्भक है। पूरक कुम्भक रेचक

त्रिविध प्राणायाम हैं। केवल कुम्भक चतुर्थ या चौथा प्राणायाम कहाता है।

रेचक प्राणायाम प्राण की वाह्यवृत्ति, पूरक प्राणायाम अभ्यन्तर वृत्ति कुम्भक प्राणायाम स्तम्भ वृत्ति कहाती हैं। प्राण के आयाम या नाप (लम्बान) का अनुमान उसकी बाहरी और भीतरी गति के विच्छेद (अभाव) से हो सक्ता है।

कालसंज्ञक मात्रा शब्द से निमेषोन्मेष (आंख के पलक खोलने तथा बंद करने) के काल या लघु अक्षर के उच्चारण काल को समझा जाता है। अभ्यास से प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म भी होते हैं। प्राण की प्राकृत वाह्यगति १२ अङ्गुल बताई गई है। अनेक कारणों से ६४ अंगुल तक हो जाती है। स्वर योगियों में अभ्यास से प्राण अनङ्गुल या नासाभ्यन्तरचारी भी हो जाते हैं। प्राणायाम, देश या लक्ष्य के अनुसार दीर्घ और सूक्ष्म कहाता है। जैसे नासिका के अग्र भाग पर ध्यान या प्राणसंयम में सूक्ष्म और मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डली उत्थापनार्थ प्राणायाम दीर्घ होता है।

मात्राओं को लक्ष्य में रखते हुये-प्राणायाम अभ्यास काल में १६ मात्रा का पूरक, ६४ मात्रा का कुम्भक और ३२ मात्रा का रेचक होता है।

"केवल कुम्भक" सिद्धयोगी को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। राजकुमार तपस्वी ध्रुव की कथा विष्णु पुराण में आती है। उनका 'केवल कुंभक' सिद्ध था। उनके प्राण के निरोध से जगत के सब प्राणियों के प्राण रुक गये थे। हरिद्वार ऐसे स्थानों में समाधि का प्रदर्शन करनेवाले योगाभ्यासी प्राण पर पूर्ण विजय नहीं प्राप्त कर सके हैं। वे अपने व्यष्टयात्मक

जीवसंज्ञक प्राण का थोड़े काल तक अवरोध करने में अवश्य समर्थ होते हैं।

पुराणों में प्राणायाम के अन्य भेद हैं–यथा सधूम विधूम, सगर्भ (जपध्यान युत) अगर्भ (जपादि रहित), सलक्ष्य और अलक्ष्य प्राणायाम।

परिणामानुसार प्राणायाम के भेद––स्वेदजनक प्राणायाम अधम, शरीर में कंपन पैदा करनेवाला प्राणायाम मध्यम और साधक को भूमि से ऊंचा कर आकाश में स्थिर रखनेवाला प्राणायाम उत्तम कहाता है। ऐसे योगी में भूमित्याग सिद्धि तथा आकाशगमन शक्ति प्राप्त होती है।

प्राणायाम और प्रणव का सम्बन्ध––

उपनिषदों में प्राणायाम को वर्णात्मक और प्रणव भी बताया है। प्रणव शब्दब्रह्म और ईश्वर का वाचक या नाम है। ब्रह्मा विष्णु शिव ब्रह्म की तीन प्रधान शक्तियां हैं। सब जीव सर्वदा अजपा जप अर्थात् "हंस हंस" यह जप करते रहते हैं। यह मूलाधारपद्मास्थित शिवशक्तिमय मन्त्र है। यह ॐकार (प्रणव) ही का जप है।

पूरक को अकार मूर्ति ब्रह्मा, कुम्भक को उकार मूर्ति विष्णु और रेचक को मकार मूर्ति रुद्र कहते हैं। उसकी तीन शक्तियां ही सृष्टि पालन और संहार करती हैं। प्रणव के प्रथमांश अकार से पृथिवी अग्नि ऋग्वेद भूलोक और राजसात्मक रक्तवर्ण ब्रह्मा की उत्पत्ति है। उसके द्वितीयांश उकार से अन्तरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुवर्लोक, और सात्विक शुक्लवर्ण विष्णु भगवान की उत्पत्ति है। उसके तृतीयांश मकार से द्यौ सूर्य सामवेद स्वर्लोक तामसात्मक कृष्णवर्ण रुद्र की उत्पत्ति हुई है।

ब्रह्मविष्णुरुद्रादि के अकार उकार मकार (प्रथम द्वितीय तृतीय) प्रणवांशों में लय होने पर परं ज्योति ॐ ही रहती है।

प्राणायाम विधि--

प्राणायाम में गायत्री जपनेवाले पूरक में अकार मूर्ति हंसवाहिनी गायत्री, कुम्भक में उकार मूर्ति गरुड़वाहिनी सावित्री और मकार मूर्ति वृषभवाहिनी सरस्वती का ध्यान करते हैं।

इड़ा (या बांये नथने) से बाहरी वायु का पान या पूरक करते हुये षोड़श (१६) मात्रा अकार मूर्ति राजसात्मक ब्रह्म का चिन्तन करै। भीतर भरी वायु को रोकते हुये चतुःषष्टि (६४) मात्रा उकार मूर्ति सात्विक विष्णु का ध्यान करै और शनैः २ रेचक करते हुये तामसात्मक मकार मूर्ति रुद्र का ३२ मात्रा ध्यान करै। इस क्रम से प्राणायाम बार २ करै। इसके द्वारा यमनियम-पालनशील बद्धपद्मासन दृढ़योगी सुषुम्ना में स्थित मल के शोषणार्थ वायु को चन्द्रनाड़ी से पान कर यथाशक्ति कुम्भक करै और सूर्यनाड़ी (दहने नथने) से शनैः २ रेचन करै। इसके पश्चात् सूर्यनाड़ी (दहने नथने) से पूरक करै, और यथाशक्ति कुम्भक के पीछे चन्द्रनाड़ी (बांये नथने) से रेचन करै। इसी तरह बदल २ कर बार २ प्राणायाम अभ्यास करै। एक नथने को दबाकर सांस पूरी तरह भीतर खींचे और रोककर दूसरे से धीरे २ सांस निकालने के समय अंगूठे को हटाकर दूसरे नथने को दबा रखे।

उत्साही योगाभ्यासी इस तरह अस्सी (८०) बार प्राणायाम एक काल में करते हैं। और प्रातः, मध्यान्ह, सायं और अर्ध रात्र में अर्थात् दिन रात में चार बार करते हैं।

१३५

कुण्डलिनी बोधन या कुण्डलिनी का जगाना—

कुण्डलिनी को जगाने का आशय यह है कि उसको योगशास्त्र विधि से स्वयम्भू लिङ्ग से हटाकर सुषुम्ना (ब्रह्म नाड़ी) में प्रवेश कराना और चक्रों का भेदन है।

इसकी विधियां अनेक हैं। किन्तु योगाभ्यास काल में मन को प्राणवायु सहित कुण्डलिनी ही में लगा रखना चाहिये। इन विधियों के कुछ प्रसिद्ध उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। यथा—केवल-कुम्भक, भस्त्राख्य प्राणायाम या कपालभाति। कुण्डलिनी को जगाने और षटचक्रों को भेदन के लिये प्राणायाम के साथ २ किसी आसन यथा स्वस्तिक, पद्म, सिद्ध, वज्रासनादि और बन्धत्रयों का प्रयोग भी बताया गया है।

ये बातें अनुभवी गुरुओं से सीखने की हैं। कुण्डलिनी को जगाने की युक्तियां (शास्त्रों से) यथा—"केवल कुंभकात कुण्डलिनी बोधो जायते।" (शाण्डिल्योपनिषत्)

"अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते॥ १३८॥ मकारे लभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला ... ॥१३९॥ (योगतत्त्वोपनिषत्)। "वज्रासनस्थो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम् ॥११२॥ कुर्यादनन्तरं भस्त्रीं कुण्डलीमाशु बोधयेत्। भिद्यन्ते ग्रन्थयो वंशे तप्तलोह शलाकया" ।३६८। योगशिखोपनिषत्

प्राणः प्रयत्नेनैव ... ॥ ५५॥ ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां मृणालान्तरतन्तुवत्। नादोत्पत्ति-स्त्वनेनैव शुद्धस्फटिकसन्निभः॥ ५६॥ आमूर्द्ध वर्त्तते नादो वीणादण्डवदुत्थितः। ... ॥ ५७॥ व्योमरन्ध्रगते वायौ गिरिप्रस्रवणं यथा। तथा रन्ध्रगते वायौ चित्ते चात्मनि संस्थिते ॥५८॥

कुण्डली याति वह्निस्तु दहत्यत्र न संशयः। सन्तप्तो वह्निना तत्र वायुनातिप्रसारितः॥७१॥

प्रसार्य फणिवद्भोगं प्रबोधं याति तत्तदा। प्रबुद्धे संसरत्यस्मिन्नाभिमूले तु चक्रिणा ॥७२॥
ब्रह्मरन्ध्रे सुषुम्णायां प्रयाति प्राणसंज्ञकः। संप्रके मारुते तस्मिन्सुषुम्णायां वरानने ॥७३॥
(योगयाज्ञवल्क्य संहितायां षष्ठोऽध्यायः)

स्तनयोरथ भस्त्रेव लोहकारस्य वेगतः ॥ ६६ ॥ रेचयेत्पूरयेद्वायुमाश्रमं देहगं धिया। यथा श्रमोभवेद्देहे तथा सूर्येण पूरयेत ॥ ६७ ॥ कण्ठसंकोचनं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत। वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्नि विवर्धनम् ॥ ६८ ॥ कुण्डली बोधकं बक्रदोषघ्नं शुभदं सुखम्। ब्रह्मनाडी मुखान्तःस्थकफ्ाद्यर्गलनाशनम् ॥६६॥ सम्यग्बन्धसमुद्भूतं ग्रन्थित्रय विभेदकम्। विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकंत्विदम् ॥

"महज्जपो यस्य सिद्धः सेवयेत्तं गुरुं सदा ॥ ८० ॥ ... ... अष्टधा कुण्डलीभूतामृज्वीं कुर्यात्तु कुण्डलीम् ॥ ८२ ॥ पायोराकुञ्चनं कुर्यात्कुंडलीं चालयेत्तदा। ... वज्रासनगतो नित्यमूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ॥ ८४ ॥ वायुना ज्वलितोवन्हिः कुण्डलीमनिशं दहेत्। संतप्ता साग्निना जीवशक्तिस्त्रैलोक्य मोहिनी ॥ ८५ ॥ प्रविशेच्चन्द्रतुन्डे तु सुषुम्नावदनान्तरे। वायुना वन्हिना सार्धं ब्रह्मग्रन्थिं भिनत्ति सा ॥८६॥ विष्णुग्रन्थिं ततो भित्वा रुद्रग्रन्थौ च तिष्ठति ॥ (योगशिखोपनिषत्)

हंस हंसेति सदा ... देहेषु व्याप्य वर्तते ...। गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं च गत्वा अनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान्निरुध्याज्ञामनुध्यायन्ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमित्येवं सर्वदा ध्यायन्। अथो नादमाधाराद्ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्फटिक संकाशं स वै ब्रह्म परमात्मेत्युच्यते ॥१॥ (हंसोपनिषत्) [इसी पुस्तक के पृष्ठ १०४ से १०६ तक देखिये]

पञ्चभूतों तथा देवों की धारणा और उनका फल—(षटचक्रों का चित्र देखिये)

चित्र में पञ्चतत्वों के स्थान, देवता, तत्त्वबीज आदि दिये गये हैं। सुषुम्नान्तर्गत षटचक्र अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। वे योगगम्य हैं। इनमें स्थित तत्त्वादि की धारणा भी योगियों द्वारा कुम्भक प्राणायाम में की जाती है। सगुण और निर्गुण उपासक दोनों ही अपने इष्टदेवों की मानसिक पूजा आदि कुम्भक में प्राण संयम द्वारा करते हैं। सुषुम्ना या ब्रह्मनाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म है। उसको कमलदण्ड के भीतरी तन्तु (सूत या रेशे) की तरह पतला बताया गया है। उसके भीतर जो रन्ध्र है उसी में शब्दगर्भा बिन्दु स्वरूपिणी सरस्वती का प्रवाह भ्रूमध्य स्थित पूर्णचन्द्र-निभ नादरूप मन के मण्डल से होता रहता है। मूलाधारचक्र नाद का आधार है। इन चक्रों में स्थित तत्त्वादि का सम्बन्ध प्राणवाही नाड़ियों द्वारा स्थूल शरीर के भू, जल, अग्निमण्डल आदि से स्थापित होता है। इड़ा नाड़ी से शरीर की प्राणवाही नाड़ियों को पूरित कर कुम्भक द्वारा वायु को चक्र २ में रोक कर पञ्चभूतों तथा देवताओं का मानसिक ध्यान किया जाता है। इन पर जय प्राप्त करने से ही उन तत्वों द्वारा योगी की मृत्यु का भय नहीं रहता। और आप्त वचनों में बताई सिद्धियां भी संभव होती हैं।

उपरोक्त कथन के समर्थक वचन—(योगतत्वोपनिषत् से)

यस्य चित्तं स्वपवनं सुषुम्नां प्रविशेदिह। भूमिरापोऽनलो वायुराकाशश्चेति पञ्चकः ॥८३॥ येषु पञ्चसुदेवानां धारणा पञ्चधोच्यते। पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवी स्थानमुच्यते ॥८४॥ पृथिवी चतुरस्रं च पीतवर्णं लवर्णकम्। पार्थिवे वायुमारोप्य लकारेण समन्वितम् ॥८५॥ ध्यायंश्चतुर्भुजा-

कारं चतुर्वक्त्रं हिरण्मयम्। धारयेत्पञ्च घटिकाः पृथिवीजयमाप्नुयात् ॥८६॥ पृथिवीयोगतो मृत्युर्नभवेदस्य योगिनः। आजानोः पायुपर्यन्तमपां स्थानं प्रकीर्तितम् ॥८७॥ आपोऽर्धचन्द्रं शुक्लं च वं बीजं परिकीर्तितम्। वारुणे वायुमारोप्य वकारेण समन्वितं ॥८८॥ स्मरेन्नारायणं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनं। शुद्धस्फटिक-संकाशं पीतवाससमुच्युतम् ॥ ८९ ॥ धारयेत्पञ्च घटिकाः सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो जलाद्भयं नास्ति जले मृत्युर्न विद्यते ॥९०॥ आपायोर्हृदयान्तंच वन्हिस्थानं प्रकीर्तितम्। वन्हिस्त्रिकोणं रक्तं च रेफाक्षरसमुद्भवम् ॥९१॥ वन्हौ चानिलमारोप्य रेफाक्षर समुज्ज्वलम्। त्रियक्षं वरदं रुद्रं तरुणादित्यसंनिभम् ॥९२॥ भस्मोद्धूलित सर्वाङ्गं सुप्रसन्नमनुस्मरन्। धारयेत्पञ्चघटिका वन्हिनासौ न दाह्यते ॥९३॥ न दह्यते शरीरंच प्रविष्टस्याग्नि मण्डले। आहृदया-द्भ्रुवोर्मध्यं वायुस्थानं प्रकीर्तितम् ॥९४॥ वायुः षट्कोणकं कृष्णं यकाराक्षरभासुरम्। मारुतं मरुतां स्थाने यकाराक्षरभासुरम् ॥९५॥ धारयेत्तत्र सर्वज्ञमीश्वरं विश्वतोमुखम्। धारयेत्पञ्चघटिका वायुवत् व्योमगो भवेत् ॥९६॥ मरणं न तु वायोश्च भयं भवति योगिनः। आभ्रूमध्यात्तु मूर्धान्त-माकाशस्थानमुच्यते ॥९७॥ व्योम वृत्तं च धूम्रंच हकाक्षरभासुरम्। आकाशे वायुमारोप्य हकारो-परिशंकरम् ॥९८॥ विन्दुरूपं महादेवं व्योमाकारं सदाशिवम्। शुद्धस्फटिक संकाशं धृतबालेन्दुमौ-लिनम् ।९९। पञ्चवक्त्र युतं सौम्यं दशबाहुं त्रिलोचनम्। सर्वायुधैर्धृताकारं सर्वभूषण भूषितम्।१००।

शक्तिचालन (कुण्डली चालन)—

उपनिषदों और योग तथा पुराण, तन्त्र और सन्तों के ग्रन्थों में बताई युक्तियों के अनुसन्धान से जो थोड़ा बोध मुझे हुआ है, उसे पाठकों के सामने प्रकाशित करता हूं।

इनके अतिरिक्त, पुस्तकों के आधार पर ही बिना गुरूपदेश के योगाभ्यास करने वाले थोड़े साधकों की शारीरिक और मानसिक बीमारियों के देखने का भी अवसर मुझे मिला है। इन्हें देखकर मैं इसी निर्णय पर पहुंचा हूं कि कुण्डली जगाने का अभ्यास किसी योगी गुरु से ही सीखना चाहिये।

कुण्डलिनी ही शक्ति है। उसका अपने स्थान से भ्रूमध्य में पहुंचाना ही शक्ति-चालन कहाता है। मुख्य साधन, दो हैं। सरस्वतीचालन और प्राणरोध (कुम्भक)। से कुण्डलिनी ऋज्वी होती है। अर्थात छेड़ने (ताड़ित होने) पर सर्पवत् सीधी होकर अपने शरीर को पसारती या फैलाती है।

शक्तिचालन का अभ्यास एकान्त में करना चाहिये। बारह अंगुल लम्बे चार अंगुल चौड़े नरम या सफेद वस्त्र को आगे करधनी में लगा कर नाभि और इन्द्री को ढक कर, वज्रासन या सिद्धासन पर बैठकर, नासिका से प्राण को खींचकर अपान वायु से बलपूर्वक मिलाना चाहिये। साथ ही साथ मूलबन्ध या अश्विनी मुद्रा द्वारा गुदा का आकुञ्चन करना चाहिये। इससे हठात् वायु सुषुम्ना में प्रवेश करती है। जब वायु ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश कर जाती है तब नाद आरम्भ हो जाता है। जैसा श्रीभगवान आदि शंकराचार्य ने अपने योगतारावली में बताया है। यथा—

ब्रह्मरन्ध्र गते वायौ गिरः प्रश्रवणं भवेत्। शृणोति श्रवणातीतं नादं मुक्तिर्नसंशयः॥

योग कुण्डलिनी उपनिषत् में कुण्डली चालनार्थ इस सरस्वती चालन अभ्यास में बद्ध पद्मासन या वज्रासन पर बैठकर बन्धत्रय समन्वित् इड़ा नाड़ी से शनैः २ पूरक और सूर्यनाड़ी से

रेचन का वार २ दो मुहूर्त पर्यन्त करने से सुषुम्ना में अपान वायु सहित कुण्डलिनी किञ्चित् ऊपर खींची जाती है।

शक्तिचालन के पश्चात् कुण्डलिनी को बलपूर्वक जल्दी से जगाने और षटचक्र तथा ग्रन्थित्रय भेदन कर सुषुम्ना में मूलाधार त्रिकोण से भ्रूमध्य तक पहुंचाने के लिये वन्धत्रय समन्वित भस्त्राख्य कुम्भक का अभ्यास नित्य करना चाहिये। ऐसे अभ्यास काल में शुद्ध चित्त से शिव प्रीत्यर्थ यमनियमादि का पूर्णतया पालन करने वाले अभ्यासी को होसके तो दूध और शुद्ध घृत, माखन आदि का ही सेवन करना चाहिये। आरम्भ में प्राणायाम विधि से नाड़ीशोधन के पश्चात् ही भस्त्राख्य अर्थात् वेग से लोहार की धौंकनी की तरह, मुख बन्द करके इड़ा (वांये) और कभी पिंगला (वांये नथने) से-एक से थकने और पसीना निकलने पर दूसरे से-पूरक और रेचक जल्दी २ और वार २ किये जाते हैं।

मूलवन्ध से अधोगतिशील अपान वायु नीचे की ओर बढ़ने से रोकी जाती है। सन्त चरणदास जी ने मूलबन्ध के लिये बज्रासन या एड़ी को गुदा के नीचे रखने के स्थान में एक कपड़े की गेंद को कसकर गुदामध्य में अभ्यास काल में बांधना बताया है। उड्डीयान बन्ध से वायु, ब्रह्म नाड़ी में उड़कर प्रवेश करती है। जालन्धर बन्ध से अर्थात् कण्ठ का संकोचन कर सिर को झुका कर ठोढ़ी को छाती पर लगाने से कुम्भक काल में छाती की वायु ऊपर की ओर दौड़ती है और ऊपर की तरफ हठ पूर्वक चलाई हुई अपान वायु प्राण की ओर आकर्षित होती है और चन्द्रमण्डल से वर्षता हुआ अमृत अग्नि के मुख में नहीं गिरने पाता।

❀ उपरोक्त शक्तिचालनादि के वर्णन के समर्थक थोड़े अन्य आप्त प्रमाण— ❀

मरुज्जयो यस्य सिद्धः सेवयेत्तं गुरुं सदा । गुरुवक्त्र प्रसादेन कुर्यात्प्राणजयं बुधः ।।८०।। वितस्ति प्रमितं दैर्घ्यं चतुरङ्गुलविस्तृत । मृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ।।८१।। निरुध्य मारुतं गाढं शक्तिचालन युक्तितः । (योगशिखोपनिषत्)

❀ शक्तिचालन मुद्रा (घेरण्ड संहिता)— ❀

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता । ... नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो वहिः स्थितः । गोपनीये गृहे स्थित्वा शक्ति चालनमभ्यसेत् ।।४७।। वितस्ति प्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम् । मृदुलं धवल सूक्ष्मं वेष्टनाम्बर लक्षणम् ।। एवमम्वर युक्तं च कटि सूत्रेण योजयेत ।। ४८।। भस्मना गात्रसंलिप्तं सिद्धासन समाचरेत । नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ।।४६।। तावदाकुंचयेद्गुह्यं शनैरश्विनि मुद्रया । यावद्गच्छेत्सुषुम्नायां प्रवेशयेतद्धठात् ।।५०।।

(इन्हें इसी पुस्तक के पृष्ठ १०७ के योगचूड़ामण्युपनिषत् के ३६ वें श्लोक के बाद पढ़िये)

कृत्वा संपुटितौ करौ दृढ़तरं बध्वा तु पद्मासनं गाढं वक्षसि संनिधाय चुबुकं ध्यानं च तच्चेष्टितम् । वारंवारमपानमूर्ध्वमलिनं प्रोच्चारयेत्पूरितं मुञ्चनप्राणमुपैति बोधमतुलं शक्तिप्रभान्नरः ।। ४०।। योगचूड़ामण्युपनिषत् ।।

निम्न बचनों को इसी लेख के पृष्ठ १०८ पर योगकुण्डल्युपनिषत् के श्लोकों के साथ पढ़िये ।

❀ शक्ति और शक्तिचालन (योगकुण्डल्योपनिषत्) ❀

कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेद् बुध । स्वस्थानादाभ्रुवोर्मध्यं शक्ति-चालनमुच्यते ।७।

तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम् प्राणरोधमथाभ्यासादृज्वी कुण्डलिनी भवेत् ॥ ८ ॥

तयोरादौ सरस्वत्याश्चालनं कथयामि ते । ९ । यस्याः संचालनेनैव स्वयं चलति कुण्डली । इड़ायां वहति प्राणे बद्ध्वा पद्मासनं दृढम् ॥ १० ॥ ... स्वशक्तया चालयेद्वामे दक्षिणेन पुनः पुनः ॥१२॥ मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयाच्चालयेत्सुधीः । ऊर्ध्वमाकर्षयेत्किंचित्सुषुम्नां कुण्डलीगताम् ।१३। तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नायां मुखं व्रजेत् । जहाति तस्मात्प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वतः । ॥१४॥ ... यथालगति कण्ठात्तु कपाले सस्वनं ततः । वेगेन पूरयेत् किंचिद्धृत्पद्मावधि मारुतम् ॥३३॥ पुनर्विरेचयेत्तद्वत्पूरयेच्च पुनः पुनः । यथैव लोहकाराणां भस्त्रा वेगेन चाल्यते ॥ ३४ ॥ तथैव स्वशरीरस्थं चालयेत्पवनं ... यथोदरं भवेत्पूर्णं पवनेन तथा लघु । धारयन्नासिकामध्यं तर्जनीभ्यां बिना दृढम् ।३६। कुम्भकं पूर्ववत्कृत्वा रेचयेदिड़यानिलम् । कण्ठोत्थितानलहरं शरीराग्निविवर्धनम् ॥३७॥ कुण्डली बोधकं... ब्रह्मनाड़ीमुखान्तस्थकफाद्यर्गलनाशनम् ।३८॥ ... ग्रन्थित्रय विभेदकम् । विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ ३९ ॥ चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके समुपस्थिते । बन्धत्रयमिदं कार्यं योगिभिर्वीतकल्मषैः ॥ ४० ॥

❀ बन्धत्रय (योगशिखोपनिषत्)— ❀

बन्धत्रयम् ... यथा क्रमम् । नित्यं कृतेन तेनासौ वायोर्जयमाप्नुयात् ॥१०१॥ चतुर्णामपि भेदानां कुम्भके ... । बन्धत्रयमिदं कार्यं ... ॥१०२॥ ... गुदं पार्ष्ण्या तु संपीड्य पायुमाकुञ्चयेत् बलात् । वारंवार यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः ॥१०४॥ प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम् । गत्वा योगस्य संसिद्धिं...नात्र संशयः ।१०५। कुम्भकान्ते रेचकादौ कर्तव्यस्तूड्डियानकः ।

बन्धो येन सुषुम्नायां प्राणस्तूड्डीयते यतः ।।१०७।। अभ्यसेत्तदतन्द्रस्तु वृद्धोऽपि तरुणो भवेत् । नाभेरूर्ध्वं मधश्चापि ताणं कुर्यात्प्रयत्नतः ।।१०८।। ... पूरकान्ते तु कर्तव्यो बन्धो जालन्धराभिधः ।१०९। कण्ठसंकोच रूपोऽसौ वायुमार्ग निरोधकः । कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद्दृढमिच्छया।११०। बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताप्यायकारकः । अधस्तात्कुञ्चनेनाशु कण्ठसंकोचने कृते ।१११। मध्ये पश्चिमतानेन स्यात्प्राणो ब्रह्मनाडिगः । वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वातु कुण्डलीम् ।११२। कुर्यादनन्तरं भस्त्रीं कुण्डली माशु बोधयेत् । भिद्यन्ते ग्रन्थयो वंशे तप्तलोहशलाकया ।११३। तथैव पृष्ठवंशे स्याद्ग्रन्थिभेदस्तु वायुना ।११४। ... सुषुम्नायां तथाभ्यासात्सततं वायुना भवेत् । रुद्रग्रन्थि ततोभित्वा ततोयाति शिवात्मकम् ११५। चन्द्रसूर्यौ समौकृत्वा तयोर्योगः प्रवर्तते । गुणत्रयमतीतं स्याद्ग्रन्थित्रय विभेदनात् ।११६। शिवशक्तिसमायोगे जायते परमा स्थितिः । ... मोक्षमार्गे प्रतिष्ठानात्सुषुम्ना विश्वरूपिणी ।।११८।।

बन्धत्रय समन्वित युक्त प्राणायाम के अभ्यास से शरीरस्थ पञ्चकाय धीरे २ वश में हो जाते हैं और हठ-पूर्वक अधोगतिशील अपानवायु ऊर्ध्वगामी की जाती है । तब वह मुड़कर सुषुम्ना नाड़ी में कुण्डलिनी सहित प्रवेश कर ऊपर चढ़ती है और जिन २ चक्रों का वह भेदन करती जाती है वे चक्र उलट २ कर ऊर्ध्वमुख होते जाते हैं ।

भस्त्राख्य कुम्भक से शरीर की अग्नि की वृद्धि होती है, सुषुम्ना नाड़ी के मुख का श्लेष्म या कफ और अन्य अर्गल (रुकावट) आदि भी नष्ट हो जाते हैं तथा मूलाधार में स्थित तेजनिधि त्रिकोण की वन्हि भी तेज हो जाती है । तब ऊष्ण वायु और जलती अग्नि से ताड़ित

होकर संतप्त विद्युतपुञ्जप्रभामयी या विद्युतस्वरूपा तप्तसुवर्ण की तरह चमकती स्वयम्भूलिंग में लपटी कुण्डलिनी (अत्यन्त सूक्ष्म बाली के रूप की) डंडे से मारी हुई नागिन तुल्य शरीर को सीधा अर्थात् फैलाकर तप्त सूई की भांति सुषुम्ना मुख या ब्रह्मरन्ध्र में वायु और मन सहित प्रवेश करती है। और विद्युद्वत् स्फुरित होकर शीघ्रता से ब्रह्मग्रन्थि तथा चक्रों का भेदन कर हृदय में विष्णुग्रन्थि का भी भेदन कर भ्रूमध्य में रुद्रग्रंथि का भेदन कर तथा शशि मंडल पार कर सहस्त्रार में पहुंच शिव के साथ युक्त होकर मुदित होती है। और वहां से अमृत में लपटी हुई फिर लौट कर मूलाधार में स्थित कुलकुण्ड में प्रवेश कर पूर्ववत् स्वयम्भूलिंग में लिपट कर निद्रालु हो जाती है।

कुण्डलिनी चलाने की अन्य युक्तियों के भी संकेत यथा केवल-कुम्भक, वज्रासनगत-मूलबन्ध का अभ्यास, दीर्घ प्रणवोच्चारण, अन्य मंत्रों-यथा बौद्धों के-"ॐ मणि-पद्मे हुँ", या तांत्रिकों के हुंकार। उसके जगने की अवधि ४० दिन से वर्षों तक बताई गई हैं।

योगाभ्यास तथा ईश्वर चिंतन का उत्तम काल सुषुम्ना स्वर है। यह नाक के दोनों नथनों में भीतर ही भीतर सांस चलने का काल है। इस समय जीवसंज्ञक प्राण इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की संधि पर रहता है।

प्रथम बार २५०] आश्विन शुक्ल १, २००६ । ओरिएन्टल प्रेस, कानपुर ।
प्रकाशक-डाक्टर, श्री प्रसादीलाल झा, एल.एम.एस, आयुर्वेदनिधि ।